गांधी की नैतिकता

ı

सुजाता

ı

सर्व सेवा संघ—प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-२२१००१

©âßü âÕßæ â¢ƒæ–
Âý·¤æàæÙ

ISBN
978-81-922755-7-4

GANDHI KI NAITIKATA

•

By
Sujata

•

Price : Rs. 50/-

गांधी की नैतिकता

•

लेखक
सुजाता

•

संस्करण : पहला
प्रतियाँ : ११००
जून, २०१२

•

प्रकाशन
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-२२१ ००१
फोन-फैक्स : ०५४२-२४४०३८५
E-mail : sarvodayavns@yahoo.co.in

•

अक्षर-संयोजन
आर.के.कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर
राजघाट, वाराणसी

•

मुद्रक
सुरभि प्रिंटर्स
इण्डियन प्रेस कालोनी,
मलदहिया, वाराणसी

•

मूल्य : पचास रुपये

भूमिका

संपूर्ण गांधी वांङ्मय रूपी महासागर में गोता लगाने के बाद मैं आनंद, रोमांच और श्रद्धा से अप्लावित हो गई। मेरी हालत उस गोताखोर की तरह हो गई जिसे अपने आस पास मोतियों का ढेर मिल गया हो वह किसे ले और किसे छोड़े। संपूर्ण गांधी वांङ्मय में मानव जीवन का कोई भी पहलू अछूता नहीं है। प्रत्येक मानवीय पक्ष को मौलिक व्यवहारिक और सार्वकालिक रूप में दर्शाया गया है। जैसे महाभारत के विषय में कहा जाता है कि जो पूरी दुनियाँ में है वो महाभारत में है और जो महाभारत में नहीं है वह दुनियाँ में भी नहीं है। बस यही हाल संपूर्ण गांधी वांङ्मय का है, यहाँ मानवता मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होने वाला कोई भी उत्प्रेरक अनुपस्थित नहीं है, किन्तु मेरी सामर्थ्य बहुत कम है फिर भी मैं एक छोटे गोताखोर की तरह चार ही मोती चुन पाई और मुझे विश्वास है कि इन मोतियों को समेटने में मैंने लापरवाही नहीं की है। निम्नलिखित चार मोतियाँ हैं–1. बापूकृत बाल पोथी, 2. महात्मा गांधी की दृष्टि में स्त्री, 3. महात्मा गांधी की दृष्टि में आध्यात्म, 4. महात्मा गांधी की दृष्टि में नैतिकता।

एक बात और कहना चाहूँगी। सम्पूर्ण गांधी वांडमय के अध्ययन और अनुशीलन से मुझे यह प्रेरणा प्राप्त हुई और गांधी के इस पक्ष पर वांडमय में यत्र–तत्र बिखरी सामग्रियों को मैं क्रमबद्ध ढंग से संकलित करने लगी। संकलन के क्रम में बार–बार मुझे लगा कि गाँधी की जीवन–शैली और जीवन–दर्शन के इस अविज्ञापित पक्ष को जनसाधारण के लिए जनसाधारण की भाषा में उपलब्ध कराया जाय ताकि नयी पीढ़ी अनुप्राणित–प्रेरित हो सके।

इस पुस्तक की सामग्री सम्पूर्ण गांधी वांडमय से ली गयी है। इस कारण मैं अपने को लेखिका नहीं, "ताकिब" मानती हूँ। यह पुस्तक जिस रूप में हैं, उसी रूप में गांधी के जीवन–दर्शन को अर्पित–समर्पित है –

"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर
तेरा तुझको सौंपते क्या जावत है मोर।"

–सुजाता

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
1. गांधी की नैतिकता	–	vii - xxiv
2. सत्य	–	01 – 12
3. अहिंसा	–	13 – 22
4. प्रेम	–	22 – 28
5. आचरण	–	28 – 37
6. आत्मशुद्धि	–	38 – 40
7. मनुष्यता	–	41 – 46
8. कर्त्तव्य	–	44 – 52
9. सेवा	–	53 – 58
10. अस्पृश्यता	–	58 – 60
11. अर्थनीति	–	61 – 64
12. समभाव	–	64 – 72
13. नम्रता	–	73 – 77
14. सत्याग्रह	–	77 – 79
15. विश्वास	–	80 – 83
16. अज्ञानता	–	84 – 88
17. मन	–	89 – 91
18. निर्भयता	–	92 – 94
19. क्रोध	–	94 – 96
20. आश्रम के नियम	–	97 – 100
21. ब्रह्मचर्य	–	101 – 112
22. नीति–मार्ग	–	113 – 123
23. स्वयं गांधी	–	124 – 136
24. मैत्री	–	137

25. स्वतंत्रता	—	138
26. महापुरूष	—	139—140
27. कृतज्ञता	—	140—141
28. हिन्दू—मुस्लिम एकता	—	141—142
29. उत्साह	—	142—143
30. पाप	—	144—145
31. कला एवं सौन्दर्य	—	146—147
32. सच्ची शिक्षा	—	148—149
33. संयम	—	150—151
34. आत्म विश्वास	—	152
35. त्याग	—	153—154
36. प्रतिज्ञा	—	155—156
37. पुस्तक	—	157
38. भारत	—	158—159
39. खादी	—	160
40. विविध	—	160—161
41. निरामिष	—	161
42. विवाह	—	162

1

गांधी की नैतिकता

महात्मा गांधी का उद्देश्य किसी नए दर्शन का विकास करना नहीं था। किन्तु ऐसा कोई पहलू नहीं जिसपर उन्होंने विचार नहीं किया हो, चाहे वह राजनीतिक पहलू हो या सामाजिक, धार्मिक हो या आर्थिक। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इनके सभी पहलुओं का आधार एक ही है, वह है—नैतिकता। जिस मनुष्य में विनय, सौजन्य, शांति, दया, दूसरों के मत—चाहे वे भ्रान्तिपूर्ण ही क्यों न हों—के प्रति आदर, काम को समझने की शक्ति, परिणामदर्शिता, त्रिकालबाधित सत्य के प्रति दृढ़ भक्ति.भाव, कार्य करने की निश्चयात्मक बुद्धि आदि गुण होते हैं, उन्हें महापुरुष कहा जाता है और ऐसे ही महापुरुष हैं—महात्मा गांधी।

महात्मा गांधी का मानना था कि जिससे हम अच्छे विचारों में प्रवृत हो सकते हैं, वह हमारी नैतिकता का परिणाम माना जाएगा। नीति मार्ग हमें यह बतलाती है कि दुनिया कैसी होनी चाहिए। यदि हमें पूर्ण बनना है तो हमें आज से हर तरह के कष्ट उठाकर नीति का पालन करना चाहिए और उन्होंने आजीवन यही किया।

महात्मा गांधी ने अपनी नैतिकता के प्रकाश से सिर्फ भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व को आलोकित किया है। राष्ट्रीय आंदोलन का यह महानायक देश की आजादी के लिए जीवन का बलिदान देने के लिए तैयार था किन्तु उसकी आजादी का अर्थ सिर्फ अंग्रेजों से मुक्ति नहीं थी। वे हिंसा, रक्तपात, असत्य, धोखेबाजी की कीमत पर आजादी नहीं चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि नैतिकता विहीन आजादी का कोई अर्थ नहीं। उन्होंने सिर्फ हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता ही नहीं दिलाई, बल्कि हमें एक वातावरण भी दिया जिसमें हम अपने नैतिक गुणों का विकास कर मनुष्यत्व को पा सकें।

ऐसा लगता है जैसे महात्मा गांधी का शरीर हाड़—मांस से निर्मित न होकर नैतिकता के अवयवों से निर्मित था। तभी तो उनके राजनैतिक गुरु गोखले का मानना था कि "जो लोग गांधी के संपर्क में आए हैं उन सबको इस पुरुष के अद्‌भुत व्यक्तित्व का एहसास अवश्य हुआ है। निस्संदेह वे इस धातु से बने हुए हैं जिस धातु से सूरमा और बलिदानी लोगों का निर्माण होता है, इतना कहना कम होगा। बल्कि उनमें वह अद्‌भुत आत्मिक शक्ति विद्यमान है जो उनके इर्द—गिर्द लोगों को सूरमा और बलिदानी बना देती है। ये ऐसे व्यक्ति हैं जिनके सामने कोई अशोभनीय कार्य करते हुए न केवल हमें शर्म आती है बल्कि जिनकी उपस्थिति में मन में भी कोई अशोभनीय बातें लाते डर लगता है।

यह उदगार है गांधी के राजनैतिक गुरु का। यहाँ गुरु की आँखें अपने शिष्य की प्रखर नैतिकता से चकाचौंध होती सी दिखती है। मानों गांधी की नैतिकता के उज्जवल प्रकाश में गोखले सद्यःस्नान कर धन्यता महसूस कर रहे हों।

इस महापुरुष का चरित्र—चित्रण करते हुए, रोम्यारोला ने कहा है कि महात्मा गांधी एक के बाद एक क्रियागत प्रयोग करते जाते हैं जिसके साथ उनका चिन्तन निश्चित दिशा में ढलता जाता है और वे सीधी लीक पर आगे बढ़ते रहते हैं लेकिन रूकते कभी नहीं हैं। इसलिए यदि कोई उनके विषय में, उन्होंने दस वर्ष पहले क्या कहा इसके आधार पर कोई धारणा बनाना चाहे तो गलती ही करेगा क्योंकि उनका चिन्तन सतत विकासमान है। पहले वे मानते थे ईश्वर सत्य है—ईश्वर के उदारत्तम गुणों में से एक, किन्तु अब वे कहते हैं सत्य ही ईश्वर है सत्य की शक्ति को स्वीकारने से तो नास्तिक भी इंकार नहीं कर सकता।

महात्मा गांधी बचपन से ही असाधारण और अलौकिक थे किन्तु उन्होंने खुद अपनी आत्मकथा में अपने को सामान्य कोटि का बतलाकर

साधारण लोगों के लिए एक प्रकाश दिखाया है कि सत्य के रास्ते पर चलकर साधारण से असाधारण कैसे बना जा सकता है।

महात्मा गांधी के जीवन में सत्य का सर्वोच्च और उत्कृष्ट स्थान था कहना गलत होगा। सत्य ही उनका जीवन था यह भी शायद ठीक नहीं होगा। बल्कि सत्य और गांधी दोनो एक दूसरे के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं। संपूर्ण गांधी वांड्‌मय को, पढ़ते वक्त मेरी आँखें सत्यरूपी गांधी से ऐसे ही चौंधिया जाती थी जैसे हजारों सूर्य से आँखे चौंधिया जाती हो।

जैसे भगवान से भक्त चिपटा रहता है, जैसे छोटा शिशु माँ से चिपटा रहता है ठीक वैसे ही गांधी सत्य से चिपटे हुए मालूम होते हैं बिल्कुल एक निश्छल और निर्दोष, शिशु सरीखे। ठीक वैसे ही जैसे माँ मेरी के साथ ईसा, वैसे ही सत्य की गोदी में गांधी।

तभी तो अमेरिकी पत्रकार ने उस समय का वर्णन किया है जब गांधी जी की गिरफ्तारी होने वाली थी—"बापू सोए थे परमेश्वर के हाथों में अपने आपको सौंपकर शिशु सहज मुद्रा में निमग्न। मेरे मन में ईसा की वह गंभीर छवि कौंध गई जब आंखों में संकल्प और अपार धैर्य लिए वे यरूशलम जा रहे थे। मुझे लगा साक्षात ईसा को देख रहा हूँ।"

महात्मा गांधी का सत्य स्थूल में नहीं था कि जिह्वा से असत्य का प्रयोग न करें बल्कि उनका सत्य इतना सूक्ष्म था कि मन और विचार में भी कभी असत्य का प्रवेश न हो।

यही नहीं गांधी जी के सामने जब कोई व्यक्ति असत्य बोलता था तो उन्हें उस व्यक्ति पर नाराजगी नहीं होती बल्कि स्वयं अपनी कमियों पर क्रोध आता कि अभी सत्य मुझसे कितना दूर है। सत्य रूपी कसौटी पर वे आजीवन अपने को कसते रहे और सत्यनारायण के समक्ष सत्यस्वरूप बनकर ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

'सत्यं शिवं सुन्दरम' की अवधारणा के बारे में उनका स्पष्ट विचार था कि यदि हम सत्य को कसकर पकड़ लेते हैं तो शिव और सुंदर जीवन में स्वतः शामिल हो जाएगा।

महात्मा गांधी के लिए सत्य साध्य था तो अहिंसा उसको प्राप्त करने का साधन। उनके अनुसार सबसे बड़ी ताकत जो मानव को प्रदान की गई है वह है अहिंसा। सत्य उसका एकमात्र लक्ष्य है क्योंकि ईश्वर सत्य से इतर और कुछ नहीं है लेकिन सत्य की प्राप्ति अहिंसा के अतिरिक्त और किसी उपाय से नहीं हो सकती।

अहिंसा को वे एक पूर्ण स्थिति मानते थे और उनका यह भी मानना था कि संपूर्ण मानव समुदाय शनैः–शनैः उस ओर बढ़ रहा है और अहिंसक होना कोई देवत्व को प्राप्त हो जाना नहीं है बल्कि यह तो सिर्फ सच्चा मनुष्य बनना है।

अहिंसा के स्थूल रूप को वे अस्वीकार करते थे कि किसीको न मारना अहिंसा है, बल्कि उनके विचारानुसार कुविचार मात्र हिंसा है, उतावली हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी के अहित की कामना हिंसा है। जिसकी जरूरत जगत को हैं उस पर अधिकार करना हिंसा है।

गांधी की इसी अहिंसक प्रवृति के चलते उनके दुश्मन भी समझ नहीं पाते थे कि वे उनसे कैसा व्यवहार करें। वे जनरल डायर के घृणित कृत्यों के विरोध में तो अपनी जान देने के लिए तैयार थे, किन्तु जनरल डायर नामक व्यक्ति से घृणा कर पाना अहिंसक गांधी के लिए मुश्किल था।

यही नहीं, जब ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल की जो भारत से अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खात्मा के लिए गांधी को ही जिम्मेवार मानता था, इच्छा होती थी या तो इस नंगे फकीर गांधी को कुचल कर मार डाला जाए अथवा अफ्रीका के जंगलों में हिंसक पशुओं के बीच छोड़ आया जाय ठीक हिरण्यकश्यपु की तरह और गांधी ठीक भगवद्भक्त प्रह्लाद की तरह मन में जरा सा घृणा और रोष के वगैर चर्चिल से कहते हैं कि खबर है आप इस सीधे–सादे नंगे फकीर को मेरा वर्णन करने के लिए ये शब्द आपके द्वारा ही प्रयुक्त बताया जाता है, कुचल डालने की

इच्छा रखते हैं। मैं बहुत अर्से से फकीर और वह भी नंगा, जो और भी कठिन काम है, बनने की कोशिश कर रहा हूँ, इसलिए इस वर्णन को मैं अपनी प्रशंसा समझता हूँ।

महात्मा गांधी सुभाषचन्द्र बोस को अपने बेटे की तरह प्यार करते थे और उन्हें प्रबल देश भक्त मानते थे साथ ही उनकी ओजस्विता और निर्भीकता को बेहद पसंद भी करते थे किन्तु उनको हिंसा के शरण में जाते हुए देखकर वे कहते हैं कि हमारे और तुम्हारे रास्ते जुदा से हो गए हैं किन्तु एक पिता अपने पुत्र के लौटने की राह देखेगा। हालाँकि सुभाषबोस सशरीर तो गांधी के पास नहीं आए किन्तु उनकी आत्मा आजाद हिन्द फौज के रूप में आई और उन सैनिकों ने बताया कि सुभाष बोस आपके प्रति अपार श्रद्धा रखते थे और आपके अहिंसा के प्रति भी क्योंकि उन्होंने हमलोगों से कहा था कि यदि मुझे कुछ हो जाए तो तुम सब बापू के पास लौट जाना और उनके बताए हुए अहिंसक मार्ग पर चलना।

वैसे ही गांधी ने अथक प्रयास किया कि भगत सिंह को फांसी नहीं दी जाए। उन्हें भगत सिंह की देशभक्ति पर नाज था किन्तु वे भगत सिंह के हिंसक कार्यों को जायज नहीं ठहरा सकते थे क्योंकि इससे उनके जीवन दर्शन के दोनों महत्वपूर्ण साधन सत्य और अहिंसा ही समाप्त हो जाते। यदि हम इस रक्तपात को जायज ठहरायेंगे तो पूरी दुनिया में हो या भारत में लादेन के रक्तपात को भी जायज कहने वाले मिलेंगे तो जार्ज बुश के भी। कश्मीर के रक्तपात को जायज कहेंगे, तो नक्सलियों के भी। इसी से गांधी जी ने एक रास्ता बताया–सुगम और सरल रास्ता–अहिंसा का रास्ता–जहाँ विनाश का सवाल ही नहीं था और यदि सत्याग्रही बलिदान देता भी है, तो उसकी आत्मा इतनी उन्नत हो जाती कि वह मृत्यु तो स्वीकार करता है किन्तु मारने वाले के प्रति अहिंसक बना रहता है।

ब्रह्मचर्य गांधी जी की दृष्टि में मोक्ष का द्वार था और वे इस द्वार में प्रवेश करने के लिए जाने वालों की पंक्ति में प्रथम रहना चाहते थे।

उनकी दृष्टि में ब्रह्मचर्य का अर्थ स्त्री जाति को अपमानित करना नहीं था बल्कि शुकदेव के समकक्ष बनना था। अविकारी शुकदेव की तरह अविकारी गांधी और उन्होंने इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए अपने सहयोगियों का विरोध भी झेला और लोगों की टीका टिप्पणियों की कोई परवाह नहीं की। क्योंकि उनके जीवन के समस्त क्रियाकलाप इस बात से बिल्कुल अप्रभावित रहते थे कि इससे लोग क्या समझेंगे। इन्हें तो अपने प्रत्येक क्रियाकलाप से इस बात की चिन्ता रहती थी कि ईश्वर क्या सोचेंगे।

लगता है जब महात्मा गांधी को लग गया कि अब जल्दी ही वे इस शरीर को त्यागकर मोक्ष को प्राप्त करने वाले हैं, तो उन्होंने अपने आपको अविकारी होने की परीक्षा की कसौटी की धार तेज कर दिया। लोग समझ नहीं पा रहे थे अभी इस झंझावात में भी गांधी इस प्रयोग पर क्यों डटे हुए हैं। गांधी को सामने मोक्ष दिख रहा था और वह तब तक अप्राप्य था जब तक अविकारी न बन जाते और उन्होंने वह स्थिति प्राप्त करके दम दिया।

पं0 नेहरू के अनुसार हमारे इस प्यारे नेता ने अपने प्रकाश से हमारी पीढ़ी को आलोकित किया और जिसने हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता ही नहीं दिलाई बल्कि हमें एक ऐसी दृष्टि दी जिससे हम उन गहरे गुणों को पहचाने जो आदमी को बड़ा बनाते हैं। आने वाले युगों के लोग अचरज करेंगे कि किसी जमाने में एक ऐसे महापुरुष ने भारत की भूमि पर पद रखा था जिन्होंने सिर्फ भारतीय जनता की ही नहीं बल्कि सारी मनुष्य जाति को अपने प्रेम और सेवा से सारावोर किया था।

महात्मा गांधी भारत वर्ष की सेवा को ईश्वर के प्रति किया गया कर्त्तव्य मानते थे। वे मानते थे कि ईश्वर ने मुझे भारत के लोगों के बीच जन्म दिया है, इसीलिए मैं उनकी सेवा में गफलत करूँ तो मैं अपने सिरजनहार का अपराधी बनूँगा। यदि मैं उनकी सेवा करना नहीं जानता तो मुझे मानव जाति की सेवा करना नहीं आएगा।

इसी से गांधी जी का देश–सेवा भी उनकी साधना का ही एक अंग था। उस सेवा के द्वारा ही वे पंचभौतिक देह से अपनी आत्मा को मुक्त करना चाहते थे। उन्होंने स्वयं कहा था कि अपनी आत्मा की मुक्ति हेतु देश सेवा करने के कारण वे उसे कुछ हद तक स्वार्थ–साधना भी मानते थे।

'मुझे उस नाशवान ऐहिक राज्य की कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो ईश्वरी राज्य–मोक्ष को पाने का प्रयत्न कर रहा हूँ–इस प्रकार मेरी देशभक्ति और कुछ नहीं, अपनी चिरमुक्ति और शांति लोक की मंजिल का एक विधान है।' इससे पता चलता है कि उनके जीवन में धर्म शून्य राजनीति का कोई स्थान नहीं था। उनकी नजर में राजनीति धर्म की अनुचरी है साथ ही वे धर्महीन राजनीति को एक ऐसी फांसी मानते थे जिसमें घुटकर आत्मा मर जाती है।

महात्मा गांधी को अपने जीवन काल में जितना अपमान सहन करना पड़ा शायद ही किसी महापुरूष को सहन करना पड़ा हो, किन्तु यह भी सच है कि अपने जीवंत काल में जितना मान सम्मान और प्रेम उन्होंने पाया शायद ही किसी और को मिला होगा। किन्तु उनका दोनो अवस्था में समभाव था। मान भी कृष्णार्पण तो अपमान भी।

वे तो यहाँ तक मानते थे कि यदि वे अपनी जिंदगी में कुछ प्राप्त कर पाए, जीवन के मूल्यों को समझ पाए और आत्मोन्नति कर पाए उसके लिए उनके साथ किए गए अपमान ही सबसे प्रेरक कारण थे।

दक्षिण अफ्रिका में गोरे कहते थे कि गांधी को अपने पास रखा जाए क्योंकि इससे उसपर थूकते रहने का मौका मिलेगा। यदि उसे मार दोगे तो यह मौका हाथ से निकल जाएगा। किन्तु गांधी ने इन बातों से विचलित होना सीखा ही नहीं था। वे राग और द्वेष से ऊपर उठे हुए थे तभी तो दक्षिण अफ्रिका में मार खाने के बाद मूर्च्छित होने के पश्चात् जब पुनः होश में आए तो मारने वाले के प्रति उनके मन में रत्ती भर भी आक्रोश नहीं था। मुस्कुराते हुए उठे और यह माना कि

हम अपने देश में जो अस्पृश्यता का पाप करते हैं उस पाप का आज कुछ प्रायश्चित हुआ। अंग्रेज हमसे घृणा करते है यदि वह गलत है तो हम अपने ही देश के अपने ही भाईयों से जो घृणा करते हैं वह कितना बड़ा पाप है?

स्वयं गांधी के शब्दों में "मार पड़ते ही मेरे मुँह से हे राम शब्द निकला और बेहोशी दूर हुई तो मैं हँसता हुआ उठा मेरे मन में जरा सा भी तिरस्कार अथवा रोष मारने वाले के प्रति नहीं था।"

मोहन से महात्मा बनने के पीछे यदि कोई सबसे बड़ा कारक दृष्टिगोचर होता है तो वह है मोहन के द्वारा जो भी पढ़ा या समझा जाना उसे आचरण में उतार लेना। वे युधिष्ठिर की तरह पाठ सीखते थे और साधारण जन दुर्योधन की तरह।

कितने ही लोगों ने श्रीमद्भगवत गीता को पढ़ा होगा, कितने बड़े–बड़े विद्वान उसकी समीक्षा और प्रवचन करते हैं किन्तु शायद कोई विद्वतजन या भक्त 'योग क्षेमं वहाभ्यम्' पढ़कर अपनी बीमा पालिसी को समाप्त करवाया होगा। इस श्लोक को पढ़कर गांधी जी ने मान लिया कि जब ईश्वर सबके भार को वहन करता है तो मेरा और मेरे परिवार का भी करेगा। बस फिर क्या था उसी क्षण उन्होंने अपनी बीमा पॉलिसी को रद् करवा दिया। किसी बात को पढ़कर आचरण में उतार लेना ही उन्हें मोहन से महात्मा बना दिया। महात्मा गांधी का मानना है कि सिर्फ अध्ययन करना और जीवन में नहीं उतारना थोथा परिश्रम यानि समय की बर्बादी है। गाँधी जी के अनुसार सर्वोच्च नैतिकता का निर्वाह करने वाले मनुष्य से धन संग्रह किया ही नहीं जा सकता। ऐसी नैतिकता कम दिखाई देती है, फिर भी नैतिक व्यक्ति को घबराना नहीं चाहिए क्योंकि वह नैतिकता का स्वामी है।

गांधी जी को अपने और दूसरों के जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने की पक्की धुन थी तथापि वे दूसरों के प्रति सदैव उदार भी बहुत थे–किसी शिशु की तरह भोले और स्नेहशील।

जिन व्यक्तियों का उनसे निजी संबंध था या जो विविध कार्यक्षेत्रों में उनके सहयोगी बने उन सबके सामने वे आचार का एक आदर्श उपस्थित करते थे और उस आदर्श से विचलन सहन नहीं करते थे। किन्तु तदनुसार आचरण करने में जिन कठिनाईयों और संघर्षों में से संबंधित व्यक्तियों को गुजरना पड़ता था उनकी ओर वे ध्यान देते थे और उनकी परेशानियों को हल करने के लिए रात दिन एक कर देते थे।

महात्मा गांधी का शब्द लोगों के दुखते हुए घावों पर मलहम का काम करता था। बिल्कुल अशांत दुखी, तप्त और दग्ध पीड़ा से व्यथित पीड़ित व्यक्ति महात्मा गांधी की बातें सुनकर अपनी पीड़ा भूल जाता और संवेदनशील गांधी उस व्यक्ति की पीड़ा को दूर करना अपना कर्त्तव्य ही मान लेते थे।

महात्मा गांधी के जीवन में एक भी ऐसा क्षण नहीं आया जब उन्होंने कभी भी किसी व्यक्ति के प्रति घृणा का लेशमात्र भाव भी महसूस किया। उन्हें खुद यह नहीं पता था कि उनमें यह सदगुण कैसे आया। इस सदगुण को वे ईश्वर प्रदत्त कृपाफल ही समझते थे।

महात्मा गांधी के जीवन में पूरी पारदर्शिता थी–अंदर बाहर एक समान। जो विचार में था; वही हृदय में, जो हृदय में था, वही वाणी में। स्वयं गांधी के शब्दों में मैंने जीवन में कभी भी यह पाप नहीं किया कि जो बात हृदय से न चाहूँ–वह मुँह से कहूँ। मेरा स्वभाव तो सीधा हृदय के द्वार में प्रवेश करना है। यदि तत्काल असफल भी हो जाता हूँ तो मैं जानता हूँ कि अंततः लोग सत्य को स्वीकार करेंगे ही।

महात्मा गांधी बचपन से ही श्रवणकुमार का नाटक देखकर माता पिता के प्रति असीम श्रद्धा रखते थे। उनके सहयोगियों का कहना था कि जब वे अपने माता–पिता की बातें करते तो सुनने वाले को ऐसा मालूम होता मानो किसी पवित्र स्थान में खड़े हों।

किन्तु उनकी पितृभक्ति या मातृभक्ति अंधी नहीं थी, उनके लिए सत्य ही परम धर्म था। इसी से अन्याय का पोषण करने वाले

माता–पिता की संतानों को वे भक्त प्रह्लाद का उदाहरण देते। अस्पृश्यता उन्मूलन की समस्या लेकर जब एक नवयुवक ने बताया कि मेरे माता–पिता आत्म हत्या की धमकी देते हैं तो गांधी जी ने कहा कि भक्त प्रह्लाद तुम्हारे सामने हैं।

महात्मा गांधी का मानना था कि जो अपने सब दुष्कर्मों का हिसाब नहीं रखता वह मानव जाति में गिने जाने योग्य नहीं है।

उनका मानना था कि यदि मेरे जीवन में कुछ गलतियाँ हुई हैं तो उसे लोगों के पास लाना चाहिए ताकि उस गलती की सजा पाकर हम प्रायश्चित करके स्वयं को परिष्कृत कर सकें। अपनी गलती की स्वीकारोक्ति की तुलना चर्च जाकर अपने गुनाहों को कबूलने से नहीं किया जा सकता क्योंकि वहाँ तो सिर्फ सिरजनहार के सामने अपने पाप की स्वीकारोक्ति करनी होती है। किन्तु गांधी का मानना था कि सिरजनहार ऐसी कौन सी बात है जो नहीं जानता और यदि सिरजनहार जानता है तो उसकी सृष्टि क्यों न जाने? उनका मानना था कि हमने अपनी गलतियों को प्रकाशित करके कुछ भी नहीं खोया, बल्कि बहुत कुछ पाया है। चित्त रूपी दर्पण के मैल सिर्फ स्वीकारोक्ति के कारण स्वतः साफ हो गए।

श्रीमती एनी वेसेंट का गांधी जी का बनारस की सभा में राजा–महाराजाओं के सामने अंग्रेजों के बोरिया बिस्तर समेटने के बारे में कहने से विरोध था क्योंकि वे मानती थीं कि उससे उन राजाओं को, जिन्हें निमंत्रित करके बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बुलाया गया है, हानि पहुँच सकती है। उन्होंने उस कारण गांधी जी का विरोध किया किन्तु साथ ही साथ यह भी कहा कि गांधी का मार्गदर्शन उनके अंतर में स्थित उनका प्रभु करता है। वे साहित्यिक दृष्टिकोण को छोड़कर गांधी को टाल्सटाय से कहीं श्रेष्ठ मानती हैं क्योंकि उनकी नजर में गांधी ने लोगों के लिए जो कष्ट उठाया वह टाल्सटाय ने कभी नहीं उठाया। लेकिन टाल्सटाय दूर रहते हैं इससे आंग्ल भारतीय उनकी

प्रशंसा कर सकते हैं और चूँकि गाँधी समीप है उससे उन्हें गाली भी दी जाती है।

क्या अभी भी हम इस दौर से नहीं निकले हैं? क्या अभी भी हम उन्हें समीपस्थ मानकर उनके नैतिक जीवन और नैतिक व्यक्तित्व का खंडन करने का प्रयास कर ही रहे हैं? क्या आने वाली पीढ़ियाँ हमें इस गलती के लिए माफ कर पाएगी क्योंकि हम यह भी नहीं कह सकते कि हम अनजान थे?

महात्मा गांधी का इस बात में कतई विश्वास नहीं था कि कोई भी जाति या लिंग जन्मजात विशेष होता है–"मेरे मत में दुनिया में कोई जगह या जाति ऐसी नहीं, जिसे उपयुक्त अवसर मिले या उचित शिक्षा दी जाए तो सुन्दर से सुन्दर मानव–पुष्प न खिल सके।"

महात्मा गांधी इतने संवेदनशील थे कि हरिजनों की पीड़ा को देखकर उनके हृदय में ऐंठन होने लगती और यदि ईश्वरीय सत्ता में उनका विश्वास नहीं होता तो शायद वे पागल हो जाते। ऐसी उनकी खुद की स्वीकारोक्ति है।

महात्मा गांधी और साधारण लोगों में जो एक बहुत बड़ा फर्क है वह है शरीर की न्यूनता और आत्मा की महत्ता में अंतर का। हम लोग शरीर को ही सब कुछ समझते हैं, शरीर को कैसे सुख मिले इसी में प्रयासरत रहते हैं और वे अपना ध्यान हमेशा इन बातों पर केन्द्रित रखते कि आत्मा कैसे उन्नत हो। उनके लिए आत्मोन्नति ही सब कुछ था। शरीर तो सिर्फ आत्मोन्नति का एक साधन, माध्यम भर था।

एक तरफ उनके जीवन में इतना ऊँचा दर्शन था, जिसमें सिर्फ 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्यां' ही उनके जीवन का आधार था। दूसरी ओर वे लोगों की छोटी सी छोटी बातों का भी ध्यान रखते कि कैसे उनके कष्ट दूर हों। गांधी जी लोगों से व्यवहार जगत की बाते बताते कि मनुष्य को मन ही मन दुख अथवा चिंता से नहीं घुलना चाहिए। जिसकी ओर से दुख का अनुभव हुआ हो उसे तुरंत कह देना चाहिए

तभी वह दुख हमारे मन में नहीं रहेगा। हम मन ही मन जो गलते कुढ़ते रहते हैं वह भी एक प्रकार का आत्मघात ही है।

गांधी जी निजी और सार्वजनिक जीवन दोनों में—वैसे भी उनके दोनों जीवन में कोई विभाजन, रेखा तो थी नहीं—बहुत विनोदप्रिय थे, छोटी—मोटी बातों में भी विनोदप्रियता ढूँढ लेते। उनके इर्द गिर्द विनोदप्रिय वातावरण बना रहता जो दूसरे व्यक्ति को सहज ही आनन्द और स्फूर्ति से भर देता।

महात्मा गांधी के लिए यह बात बेहद आश्चर्य जनक थी कि कैसे किसी से वैर बाँध लिया जाता है? उनको पुनर्जन्म में पूर्णविश्वास था इसी से वे यहाँ तक मानते थे के यदि मैं इस जन्म में किसी को अपने प्रेम में नहीं बांध सका तो अगले जन्म में जरूर सफल रहूँगा।

उनके संपूर्ण जीवन पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि मनुष्यत्व की ऊँचाई को प्राप्त करने के लिए उनकी सतत प्रक्रिया चलती रहती थी। हमेशा सजग रहते थे वे। एक भी क्षण चूक हो जाए, ऐसा नहीं था चाहे वह वाणी की चूक हो या शरीर की, आत्मा की चूक हो या मन की। असल में उनकी सजगता का सबसे बड़ा रहस्य था अहर्निश ईश्वर से उनका तार जुड़ा रहना। उनका ईश्वर सत्यस्वरूप था इसी से वे एक पल के लिए सत्य का साथ नहीं छोड़ते थे और यदि सत्य साथ है तो चूक होने का सवाल कहाँ उठता है?

महात्मा गांधी स्वयं को प्रेमाग्रही मानते थे। किन्तु वे सिर्फ प्रेमाग्रही नहीं प्रेममूर्ति भी थे। प्रेम में डूबा हुआ जिसका प्रेम न तो शब्द की सीमाओं में आबद्ध होता है, न मानव की सीमा में, ईश्वरीय प्रेम में आकंठ डूबा हुआ। जिसे संपूर्ण ईश्वरीय सृष्टि में ईश्वरीय अनुभूति होती थी।

श्रीमद्भगवत गीता को अपनी माता मानने वाले गांधी अपनी माता के आज्ञानुसार अनासक्त बन गए। उन्होंने सिर्फ गीता पर अनासक्त योग नाम से टीका ही नहीं लिखी बल्कि खुद अनासक्त योगी बन गए। उनका मन कभी भी बाह्य कारणों से सुखी या दुखी नहीं होता

था। उनके अनासक्त बनने का सबसे बड़ा कारक तो था—ईश्वर में उनकी अटूट श्रद्धा और समर्पण। न्यायप्रिय ईश्वर जो भी करेगा, वह अच्छा ही होगा, भला ही होगा और दूसरा अपना स्नेह, प्रेम जो परिवार और कुटुम्बियों तक सीमित था, उसे पूरी दुनियाँ तक विस्तार कर देना। उनका स्नेह कौटम्बिक बंधनों से मुक्त होकर असीम बन गया।

कुछ चीजों के लिए गांधी बहुत आग्रहशील थे। उसमें एक नम्रता भी थी। क्योंकि उनका मानना था कि नम्रता के बिना आध्यात्मिक विरासत मिलती ही नहीं है। उनमें सम्मान पाने की इच्छा नहीं थी, यह कहना गलत होगा, बल्कि सच्चाई तो यह थी कि उन्हें अपने सम्मान के प्रति अरूचि थी और अपमान होने पर वे अपने अंदर एक विशेष बल का अनुभव करते थे।

महात्मा गांधी निर्भीकता को मनुष्य के लिए सबसे जरूरी मानते थे। उनका मानना था कि एक आदमी दूसरे आदमी से क्यों डरे? सिर्फ ईश्वर के सिवा, और किसी से डरना बेबुनियाद है। गाँधी की यह अपील भारतीय जनमानस पर छा गयी। जो भारतीय अंग्रेजी शासन के एक सिपाही की लाल टोपी देखकर भयभीत हो जाते थे वे महात्मा गाँधी के आह्वान पर अपने घरों से निकल कर सड़कों और गलियों पर निर्भीकता पूर्वक अंग्रेजी शासन—व्यवस्था का विरोध करने लगे। पूरे जनमानस को जागृत कर दिया। निर्भीकता के इस मंत्र ने थके—हारे भारतीयों के अन्दर ऊर्जा का संचार कर दिया।

महात्मा गांधी एक क्रान्तिकारी समाज सुधारक थे। किन्तु उनकी क्रान्ति में विद्वेष या आक्रोश नहीं था। उन्हें हरिजनों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक तत्कालीन स्थिति से बहुत दुख और क्षोभ था। यहाँ तक कि वे सोचते थे कि यदि ईश्वर पर उनका विश्वास नहीं होता तो वे पागल हो जाते। फिर भी, वे क्रोध या आवेश में आकर यह नहीं सोचते थे कि ब्राह्मणों को खींचकर नीचे लाया जाय, बल्कि वे यह सोचते थे कि उन्हें ब्राह्मणों के समकक्ष बैठा दिया जाये चूँकि

गांधी दर्शन में हिंसा का स्थान ही नहीं है। इसी से जातीय संघर्ष की जगह उनकी कोशिश थी कि अब्राह्मण भी ब्राह्मण की ऊँचाई पर पहुँचे, यह नहीं कि उसे नीचे उतारना पड़े।

महात्मा गांधी के लिए जीवन में कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं था। प्रत्येक छोटे से छोटे काम को वे अपने हाथों से करते। दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों के घर–घर जाकर उनके शौचालयों की स्थिति देखते, उसकी स्वयं सफाई करते और गृहस्वामियों से करवाते। उनके शौचालयों में बाल्टी है कि नहीं, मग है या नहीं जैसी छोटी–छोटी बातों पर स्वयं ध्यान देते।

भारतीयों को जिन गंदी आदतों के कारण अंग्रेजो से घृणा झेलनी पड़ती, उसे दूर करने के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहते। उनका मानना था कि प्रत्येक बात के लिए सिर्फ अंग्रेज को दोष न दें, क्योंकि यदि उन्हें हमारी गंदगी देखकर बेहोशी होती है तो हम यह नहीं कह सकते कि उन्हें ऐसा करने का हक नहीं है, बल्कि सच्चाई तो यह है कि जरूरी नहीं कि गरीब गंदगी में रहें। हम गरीब हो सकते है, किन्तु गंदे नहीं।

आप कैसे थूकें, कैसे नाक झिड़कें, कैसे टट्टी करें जैसी छोटी–छोटी बातों पर उन्होंने कितना काम किया है। आज भी सभ्य कहे जाने वाली पीढ़ी, जो अपने को शिक्षित मान रही है, उसे कहाँ होश है, कैसे शौचालय का इस्तेमाल करें और कैसे थूकें या नाक झिड़कें।

महात्मा गांधी ने अपनी दृष्टि को एक क्षण के लिए भी विद्वेष, रोष या ओछेपन के कारण धुंधला होने नहीं दिया। व्यक्तियों और राज्यों में जो गुण था उसे स्वीकार किया तथा विवादास्पद व्यक्ति में भी कुछ न कुछ गुण देखा।

महात्मा गांधी लोगों पर गजब का विश्वास करते थे कभी–कभी उन्हें लोगों से घोखा भी खाने को मिलता था, तब उन्हें अपने सहयोगियों का यह उलाहना भी सुनना पड़ता था कि उतना विश्वास क्यों, जब

इतनी बार धोखा खा चुके है? किन्तु गांधी जी का चिन्तन था कि आजतक कभी विश्वास करने वाला आदमी घाटे में नहीं रहा है हमेशा विश्वास घात करने वाला ही घाटा में रहा है। फिर उनके पास आश्रमवासियों के प्रश्न का जबाव भी था कि जब मेरे पुत्र हरिलाल द्वारा बार–बार गलतियाँ करने के पश्चात् माफी माँगने पर और सुधरने का वादा करने पर आप लोग स्वयं भी उस पर विश्वास करते हैं, मुझे भी करने देते हैं, तो फिर दूसरों पर अविश्वास मैं कैसे करूँ, मैं सिर्फ उसके लिए इतना उदार क्यों रहूँ जो संयोगवश मेरा पुत्र है और दूसरा नहीं?

साबरमती का आश्रम हो या सेवाग्राम का महात्मा गांधी के लिए वह सिर्फ एक प्रयोगशाला की तरह था। एक ऐसा प्रयोगशाला जहाँ लोगों को साँचे में ढालने का प्रयोग होता था। कोई अपने को सत्य के साँचे में ढालने की कोशिश कर रहा था, तो कोई अहिंसा के। कोई ब्रह्मचर्य की सूक्ष्मता से अपने अंतर को भर रहा था। कोई अपनी स्वादेन्द्रिय को काबू करने के लिए तरह–तरह का प्रयोग कर रहा था।

गुरुदेव ने कहा था–"कदाचित् महात्मा गांधी पूर्ण सफल नहीं हो पाएँगे। कदाचित् वह उसी प्रकार असफल होंगे जिस प्रकार मनुष्य को खलता से हटाने में बुद्ध तथा ईसा असफल रहे। परंतु लोग उन्हें सदा ऐसे व्यक्ति की तरह याद करेंगे जिसने अपने जीवन को आनेवाले अनंत युगों के लिए एक नसीहत बना दिया।"

महात्मा गांधी का मानना था कि मत बदलते हैं परन्तु नीति नहीं, नीति का वास हमारे हृदय में है। यदि कोई शैतान इस दुनिया में द्वेष और झूठ की दुहाई फिरवा दें तो भी न्याय और सत्य तो ईश्वरीय ही रहेंगे।

महात्मा गांधी के अनुसार खुदा या ईश्वर सर्वशक्तिमान है, संपूर्ण है। उसकी दया, उसकी अच्छाई तथा उसके न्याय का पार नहीं है, तो उसके बंदे कहलाने वाले हमलोग नीति–मार्ग का परित्याग कर ही कैसे सकते हैं? कुछ लोग कहते हैं कि धर्म और नीति में कोई संबंध नहीं है किन्तु नीति के बिना धर्म टिक नहीं सकता। जो लोग अपने

स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि नीति के लिए नीति का पालन करते हैं, उन्हें ही धार्मिक कहा जा सकता है।

लुई फिशरने लिखा है कि–"गांधी जी एक दृढ़ व्यक्ति थे और उनकी दृढ़ता का कारण उनके व्यक्तित्व का ऐश्वर्य था न कि उनकी संपत्ति की बहुलता। उनका लक्ष्य अस्ति था, परिग्रह नहीं। आनंद उन्हें आत्मबोध द्वारा प्राप्त होता था। वह अभय थे। इसलिए उनका जीवन सत्यमय था। वह अकिंचन थे, पर अपने सिद्धांतों की कीमत चुका सकते थे।"

महात्मा गांधी अपने जीवन काल में ही अलौकिक और अद्वितीय बन गए थे। अपने को उनका शत्रु मानने वाले अंग्रेज भी उनकी प्रखर नैतिकता के कारण उन्हें अलौकिक मानते थे। जब संपूर्ण भारतवर्ष में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया जा रहा था। इंग्लैण्ड के मिल मालिक और मजदूरों की हालत भी खराब हो रही थी। यहाँ तक कि गुरूदेव और चार्ली एण्ड्रयूज को भी महात्मा गाँधी के इस बहिष्कार के प्रति प्रतिरोधात्मक विरोध था। उसी समय महात्मा गांधी का गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने इंग्लेण्ड जाने का प्रोग्राम बना। जब उन्होंने लंकाशायर जाने की बात की तो सबों के मन में आशंका थी कि गाँधी को वहाँ बेशुमार विरोध और अपमान का समाना करना पड़ सकता है। किन्तु गांधीजी जानते थे कि लंकाशायर के मिल मालिक हों या मजदूर, उन्हें किन्हीं से भी कोई द्वेष नहीं है। उन्हें तो बस यह बतलाना था कि आपकी आर्थिक स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा है, किन्तु पूरब और पश्चिम के इस आर्थिक अंतर की तथा कारूणिक दृश्य की आप कल्पना नहीं कर सकते हैं।

लंकाशायर में उन्हें विरोध की जगह इतना प्यार, सम्मान और श्रद्धा मिली, कि उसकी गरमाहट में इंग्लैण्ड की सर्दी में भी एक लंगोटी पहने गांधी प्रेम रूपी गर्माहट को महसूस कर रहे थे। उन लोगों ने कहा आप एक अनोखे आदमी हैं, अपने देशवासियों के लिए भी और हमारे देशवासियों के लिए भी, आप हृदय से इतने शुद्ध और सच्चे हैं

कि हमारे मन में शंका पैदा हो जाती है कि क्या ऐसा हो सकता है? आप इतने सरल हैं कि हममें से कुछ लोग हैरत में पड़ जाते है।

स्टैफर्डक्रिप्स का मानना था कि वह किसी काल में और वास्तविक में आधुनिक इतिहास के ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं जानता जिसने भौतिक वस्तुओं पर आत्मा की शक्ति को इतने जोरदार और विश्वासपूर्ण पूर्ण तरीके से सिद्ध किया हो।

इसी से रोम्या रोला कहते हैं–"गांधी जी बहुत ऊँचे संत हैं बड़े ही पवित्र और उन वासनाओं से मुक्त जो मनुष्य में सुप्त पड़ी रहती है।"

लेकिन एक बहुत बड़ी विडम्बना और त्रासदी गांधी जी के साथ भी जुड़ी हुई है, लेकिन वे पहले, महापुरूष नहीं जिन्हें अपने जीवनोंपरांत अपनी महानता की कीमत देनी पड़ी है। वे चाहे कृष्ण हों या महावीर बुद्ध हों या ईसा या कोई और, इससे अछूता नहीं रहा।

उनकी उस महानता की कीमत हमलोग इसलिए वसूल करते हैं क्योंकि हमलोग नादान हैं। महापुरूष की उन विराट बातों को जो हमारे संकीर्ण मस्तिष्क में नहीं समा पाते–उस पूर्ण सत्य को नहीं देख पाते। न वह बुद्धि है और न दृष्टि तो उस संपूर्ण पक्ष के किसी एक कोण को देखकर उसे ही सत्य मानकर अपनी लेखनी और वाणी का इस्तेमाल उनके विरूद्ध करते हैं।

अविकारी गांधी जिसका जीवन ही सत्य–अहिंसा, ब्रह्मचर्य, था उसपर स्त्रियों के प्रति उनके सहज प्रेम, स्नेह और उनकी संवेदनशीलता को लेकर कितने काम पिपासुओं को उसपर चटकारे लेकर अपनी वाणी को असंयमित करके मर्यादाविहीन बातें करते सुनते देखकर मन लज्जा और क्षोभ से भर जाता है।

किन्तु गांधी का ही मानना है मानवता एक महासागर है। यदि महासागर की कुछ बूंद गँदी हो जाए तो सारा महासागर गंदा नहीं हो जाता। इतिहास की दृष्टि से गांधी को गए सिर्फ पैंसठ साल हुए हैं और यह एक बहुत ही छोटा काल है। ईसा के जाने के लगभग

दौ सौ साल बाद लोगों ने ईसा को इतनी बड़ी संख्या में अपनाया। उस हिसाब से तो गांधी जीवंत काल में जितने लोगो द्वारा अपनाये गए, वह सौभाग्य दूसरों के लिए दुर्लभ था। आने वाली पीढ़ियों के पास गांधी के सिवा और दूसरा क्या विकल्प होगा? कुछ भी नहीं। दुनिया सभ्य से सम्यतर, सुन्दर से सुन्दरतर होती जाएगी और अपने पूर्वजों की मूर्खता को माफ कर देगी कि उसने उस आश्चर्यजनक मसीहा को इसके लिए मार दिया कि वह अपने दुश्मन से भी प्यार करने के लिए कहता था। वह दो भाई के बंटवारे की संधि के उल्लंघन को गलत मानता था। वह स्त्रियों को भी सिर्फ मानव समझता था न कि वस्तु। वह इंसान द्वारा पैदा किए गए किसी भी अंतर, ऊँच–नीच, भेद–भाव को गलत मानता था। वह पूरी दुनियाँ से प्रेम करता था। वह हिन्दू–मुस्लिम और ईसाई की सीमा में अपने को नहीं बाँधता था। वह दुनिया के सभी धर्मों की इज्जत और श्रद्धा करता था। वह सत्य और सिर्फ सत्य का उपासक था। वह मन–वचन और कर्म से अहिंसक था। वह ऐसा ब्रह्मचारी था जो स्त्री और पुरूष को समानता का सम्मान देता हुआ दोनो के परस्पर सहज संबंध को ही नैसर्गिक मानता था। जो इतना अपरिग्रही था कि सेवा के लिए सबकुछ लुटा दिया। जिसने अस्वाद व्रत का पालन करके अपनी स्वादन्द्रिय पर विजय प्राप्त कर लिया था। जो इतना अभय था कि पूरी दुनिया में किसी से डरता ही नहीं था चाहे वह भयानक वन्यप्राणी हो या विश्व का अधिनायक।

जिसकी प्रखर नैतिकता ने हमारी कमजोर आँखों को चकाचौंध कर दिया। जिससे हम उन्हें ठीक से नहीं देख पाए। किन्तु यदि आज भी महात्मा गांधी के कहे अनुसार नीति–मार्ग पर चलते हुए अपार कष्ट उठाकर भी सत्य तक पहुँचने की कोशिश नहीं की जाएगी तो आने वाली पीढ़ियाँ हमें कभी माफ नहीं करेगी।

सत्य

जहाँ सत्य है, वहाँ खुदा है और जहाँ खुदा है, वही सत्य है। मैं खुदा से डरकर चलने वाला आदमी हूँ। मैं सत्य को चाहता हूँ, इसलिए खुदा मेरे पास है। सत्य की राह चलना कौम को पंसद नहीं हो तो भी मैं वही करूंगा जो खुदा को पंसद है।

सत्य पर आरूढ़ होना ही सत्याग्रह है और यही हमारा मुख्यताली है। धर्म में अन्य बहुत सी बातें भले ही हो किन्तु सत्य के बिना धर्म होता ही नहीं।

सत्य अखण्ड है, सर्वव्यापक है, परंतु वह अवर्णनीय है, क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है, अथवा परमेश्वर ही सत्य है। दूसरी सब चीजें मिथ्या और असत्य हैं। अर्थात् उनमें जिस परिणाम में जितना सत्य है वही ठीक है।

मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उसपर क्रोध आने के बजाय स्वयं अपने ऊपर ही अधिक क्रोध आता है क्योंकि मैं जानता हूँ कि अभी मेरे अंतर में कहीं असत्य का वास है।

सत्य शब्द की उत्पत्ति सत् से हुई है। सत् का अर्थ है होना। तीनों काल में एक ही रूप में एक मात्र अस्तित्व परमात्मा का है। जिस सज्जन ने ऐसे सत्य की भक्ति करके उसे अपने हृदय में स्थान दे दिया है, उसे मेरा कोटि–कोटि नमस्कार। इस सत्य की सेवा के लिए मैं जी जान से कोशिश कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि उसके लिए हिमालय की चोटी से कूद पड़ने की हिम्मत मुझमें है। फिर भी मैं यह जानता हूँ, अभी भी मैं उससे बहत दूर हूँ।

ज्यों–ज्यों मैं उसके नजदीक पहुँचता जाता हूँ त्यों–त्यों मुझे अपनी अशक्ति का ज्ञान अधिकाधिक होता जाता है और त्यों–त्यों

यह ज्ञान मुझे नम्र बनाता जाता है। हाँ अपनी अशक्ति को न जानने के कारण अभिमान रखना संभव है। परंतु जो जानता है, उसका गर्व दूर हो जाता है। मेरा तो कभी का दूर हो गया है।

तुलसी दास जी ने अपने को शठ कहा है उसका मर्म मैं ठीक–ठीक समझ सकता हूँ। यह मार्ग शूरवीरो का है कायरों का यह काम नहीं। जो चौबीसों घंटे प्रयत्न करता है, खाते–पीते–बैठते सोते, सूत कातते, शौच आदि प्रत्येक काम करते हुए जो केवल सत्य का चिन्तन करता है, वह अवश्य सत्यमय हो जाता है और जब किसी के अंदर सत्य का सूर्य संपूर्णतः प्रकाशित होता है, तब वह प्रकाश छिपा नहीं रहता। तब उसे, बोलने, बतलाने या समझाने की जरूरत नहीं रहती या उसके बोल में भी इतना बल होता है, इतना जीवन भरा होता है कि उसका असर लोगों पर तुरंत होता है। ऐसा सत्य मुझमें नहीं है। हाँ इस मार्ग पर अवश्य चल रहा हूँ।

सत्य में प्रेम होता है। सत्य में अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदि का समावेश हो जाता हैं। सत्य को जान लेने के बाद जो हिंसा करता है, वह सत्य का त्याग करता है। सत्य को जान लेने के बाद जो व्यभिचार करता है, वह तो मानो सूर्य के रहते हुए अंधेरे के अस्तित्व को मानता है। हम सच्चे हो, सत्य के बदले सत्य का ढोंग काम नहीं दे सकता। भले ही रूपए में एक आना ही पर हों हम सच्चे। हम थोड़े बहुत सत्य में भूले–भटके, जाने–अनजाने में वाणी के असत्य का किंचित भी समावेश हरगिज न करें।

हम सत्य को इतनी दृढ़ता से पकड़े कि भले ही हमारे हाथ टूट जाए लेकिन हम उसे न छोड़ें। हम इस मंत्र को अपने अन्तःकरण में इस सीमा तक अंकित कर लें कि उसके मन में किसी और वस्तु का विचार आए ही नहीं।

मनुष्य जैसे–जैसे सच्चा बनता जाता है वैसे–वैसे सत्य उससे दूर भागता है क्योंकि वह समझ जाता है कि उसने जल्दी में जिसे सत्य मान लिया था, वह तो वस्तुतः असत्य था।

सत्य का आचरण करने वाला सदाचारी मनुष्य हमेशा नम्र होता है। अपने दोषों को वह निरंतर अधिकाधिक समझता जाता है। ब्रह्मचारी से ब्रह्मचर्य दूर भागता चला जाता है क्योंकि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी देखता है कि उसके अन्तरतम में बहुत अधिक विषय लालसा विद्यमान है। अपने स्थूल ब्रह्मचर्य से उसे संतोष नहीं होता। मोक्षार्थी से भी मोक्ष दूर भागता जाता है। इसी से महान 'नेति' शब्द की खोज हुई। प्राचीन काल में अनेक महान ऋषि 'मोक्ष–आत्मा' को ढूढ़ने के लिए निकले। इनकी खोज में अनेक घाटियों में उतरे, अनेक पहाड़ों पर चढ़े, बहुत सारी कंटीली, झांड़ियों को उन्होंने पार किया और अंत में उन्हें मालूम हुआ 'यह नहीं है।' कौन जाने उनमें से कितनों ने मोक्ष की झांकी देखी होगी तथापि हम इतना तो जानते ही हैं कि वे ऐसे पारखी थे, इतने चतुर थे कि वे छले नहीं गए।

सत्य ही वह वस्तु है जिसकी खोज सबसे पहले करनी चाहिए और फिर सौदर्य और शिवत्व की प्राप्ति तो तुम्हें उसके साथ अपने आप हो जाएगी। मेरे लेखे ईसा मसीह एक श्रेष्ठ कलाकार थे। क्योंकि उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया और उसे अभिव्यक्ति दी, वैसे ही मुहम्मद साहब भी। चूंकि दोनों ने सर्वेप्रथम सत्य को पाने का प्रयत्न किया, इसलिए स्वाभावतः उनकी अभिव्यक्ति में प्रांजलता आ गई। इसी सत्य और सुन्दर के लिए मैं लालायित हूँ और इसी के लिए जीता हूँ और इसी के लिए मरना चाहता हूँ ।

जो व्यक्ति सत्य का अन्वेषण करता है उसके साथ लाखों लोगों का होना कोई आवश्यक बात नहीं है।

सत्य के लिए तपश्चर्या तो करनी ही पड़ती है। सत्य का साक्षात्कार करने वाले तपस्वी ने चारो और फैली हुई हिंसा में से अहिंसा देवी को संसार के सामने प्रकट करके कहा : हिंसा मिथ्या है, माया है, अहिंसा ही सत्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह भी अहिंसा के लिए ही है। ये अहिंसा को सिद्ध करने वाली शक्तियाँ है। अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।

यदि किसी धार्मिक ग्रंथ में किसी प्रसिद्ध पुरूष के पाप करने का उल्लेख हो तो क्या उससे हमें भी पाप करने की आज्ञा मिल जाती है। यदि हमसे उन्होंने केवल एक बार कह दिया है कि इस संसार में केवल सत्य की ही सत्ता है और सत्य परमेश्वर के तुल्य है तो हमारे लिए इतना ही बहुत है।

सत्य ही ईश्वर है, यह जहाँ तक मनुष्य की वाचा पहुँच सकती है वहाँ तक पूर्ण वाक्य है। सत्य सत धातु से निकला हुआ शब्द है और सत् के मानी तीनों काल में होना है। तीनों काल में जो हो सकता है, वह तो सत्य ही है और उसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं। सत्य को परमेश्वर के रूप जानने से अनेक प्रपंचो से छूट जाते हैं। चमत्कार देखने या सुनने की इच्छा नहीं रहती। ईश्वर दर्शन का अर्थ समझने में मुश्किल हो सकती है, सत्य–दर्शन का अर्थ समझने में कठिनाई नहीं है। जैसे–जैसे हम सत्य के नजदीक पहुँचते जाते है वैसे–वैसे हम इस सत्यरूपी ईश्वर की झांकी देखने लगते हैं। इसलिए पूर्ण दर्शन की आशा बढ़ती है और श्रद्धा भी बढ़ती है।

सत्य ही ईश्वर, में नास्तिकवाद का स्थान ही नहीं रहता है क्योंकि नास्तिक भी अस्ति को मानता है और अस्ति का मूल रूप सत् है इस जगह सत्य का अर्थ सत्य कहना ही नहीं, सत्य का अर्थ यहाँ मन, वचन और काया की एकरूपता है और इससे अधिक है जो कुछ भी इस जगत में वस्तुतः है भूतकाल में था, भविष्य में होगा–वही सार है, सत्य है, परमेश्वर है और उसके सिवाय कुछ नहीं है।

मेरे लिए सारा जीवन एक सत्य का प्रयोग है। सत्य की शोध में ही अहिंसाका साधन मुझे प्राप्त हुआ। स्वाभाव से मैं शुरू से ही सत्य का पुजारी था लेकिन अहिंसक नहीं था। मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं है और अहिंसा से बढ़कर कोई कर्त्तव्य नहीं है। सत्य के लिए देश के नाश का साक्षी बनना पड़े तो बनना चाहिए।

जिस प्रकार परमात्मा की सुनिश्चित व्याख्या करना असंभव है उसी प्रकार सत्य की भी असंभव है। जब मैं सत्य की सुनिश्चित व्याख्या करने लायक हो जाऊँगा तब सत्य मेरे लिए परमात्मा नहीं रह जाएगा।

सत्य–वचन की शक्ति वहाँ तक जाती है कि मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ में ले जाती है।

यदि मोक्ष भी सत्य और अहिंसा के प्रतिकूल हो तो मुझे मोक्ष भी त्याज्य है। उक्त तीनों बातों में मैंने सत्य का ही सेवन किया है।

हिन्दुस्तान की भूमि किसी जमाने में सुवर्ण भूमि मानी जाती थी। क्योंकि भारतीय लोग सुवर्ण रूप थे; भूमि तो वही की वही है लेकिन लोग बदल गए हैं। इसलिए यह भूमि वीरान सी हो गई है। उसे पुनः सुवर्ण बनाने के लिए हमें स्वयं को अपने सद्गुणों से सुवर्ण बनाना होगा। उसका पारसमणि ढाई अक्षरों में रहा है और वह है 'सत्य'।

हमारी मुख्य आवश्यकता सत्यवादिता है। सत्य, सत्य और केवल सत्य यही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। हम सत्य के बल पर दुखों के समुद्र भी लांघ सकेंगे। सच्ची मनोवृति से किया गया काम कभी निष्फल नहीं जाता।

अहिंसा और सत्य पर्यायवाची व्याख्याएँ हैं। 'सत्यं ब्रूयात प्रिय ब्रूयात' में यही भावना ओत–प्रोत जान पड़ती है। जिस सत्य में दुख नहीं, वही खरा है और अहिंसामय है। सत्य कड़वा लगता है, लेकिन उसका परिणाम दुखमय नहीं होता। सत्य के प्रयोग से सामने बैठा हुआ व्यक्ति चिढ़ जाएगा लेकिन उसकी आत्मा गवाही देगी कि उसके विषय में जो कुछ कहा गया है, वह शुद्ध उद्देश्य से कहा गया और सही है। सत्य का हम बहुत व्यापक अर्थ लेते हैं। सत्य अथार्त केवल सत्यवचन नहीं बल्कि जो अर्थ ब्रह्म–सत्य में समाया हुआ है।

मुझे विश्वास है कि आप किसी महान ॠषि के आदेश पर भी कभी सत्य के रास्ते विचलित नहीं हो सकते। क्या कोई शपथ किसी व्यक्ति को अनुसरण करने से रोक सकती है।

सत्य का मार्ग शूरों के लिए ही है। इसमें कायरों का कोई काम नहीं है।' इस का मर्म मैं दिन–दिन अधिकाधिक समझ रहा हूँ। सत्य के मार्ग की खोज और उसका अनुसरण बचपन से ही किया जाए। तभी बड़े होने पर हम असत्य से बच सकते है। जिस प्रकार हम किसी बीमारी की उपेक्षा करें तो वह हमारे शरीर में घर कर लेती है और असाध्य हो जाती है। उसी प्रकार यदि हम बचपन से अपने भीतर असत्य को घर कर लेने दें तो वह आगे चलकर महाव्याधि का रूप ले लेता है। वह असाध्य जैसा हो जाता है और हमें लगातार क्षीण करता रहता है। यही कारण है कि हम देखते है कि हमारे भीतर असत्य बढ़ रहा है।

सत्य का मार्ग शूरो का है, क्योंकि हिमालय पर चढ़ने वालों के लिए जिस पराक्रम की जरूरत है, सत्य की खड़ी सीढ़ी चढ़ने में उससे भी ज्यादा पराक्रम की आवश्यकता है। इसलिए यदि हमें इस जन्म में कुछ भी पुरूषार्थ करना है और अपना कल्याण करना है, तो हमें सत्य को पहला स्थान देना चाहिए और उसमें अविचल श्रद्धा रखकर आगे बढ़ते जाना चाहिए।

यदि मैंने इस जीवन में किसी भी वस्तु का अनन्य दृढ़ता के साथ सेवन किया है, तो वह अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का। इन तीनों का पालन करना कितना कठिन है, इसे मेरी अन्तरात्मा ही जानती है। मेरी मान्यता है कि मैंने इन तीनों का कर्म और वचन से अच्छी तरह पालन किया है। मेरे मन में क्रोध का भाव कभी उत्पन्न नहीं हुआ; ऐसा कहूँ तो यह असत्य भाषण होगा, मन में विषय वासना नहीं जगी; ऐसा कहूँ तो पापी बनता हूँ।

अपने मोक्ष के सिवा मैं और किसी चीज का पक्षपाती नहीं बन सकता हूँ, परंतु यदि मोक्ष भी सत्य और अहिंसा के प्रतिकूल हो तो मोक्ष भी मुझे त्याज्य है।

आप एक पलड़े पर सत्य को रखिए और एक पर अपने यज्ञों को सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा।

सत्य की अंतिम विजय में मेरा विश्वास डिगाया नहीं जा सकता और मेरे लिए अगर किसी चीज का कोई महत्व है तो वह सत्य ही है। सत्य के मार्ग पर चलते हुए हम जीवन में मिले सारे कष्ट उस समय भूल जाऐंगे, जब हम चोटी पर पहुँच जाऐंगे।

इस संसार में दो–केवल दो वस्तुएँ ऐसी है जिनके अलावा और कुछ ऐसा नहीं है जिसका मैं देश के लिए त्याग न कर सकूँ। वे दो वस्तुएँ हैं–सत्य और अहिंसा। मैं इन दोनों का त्याग सारे संसार के लिए भी नहीं करूँगा। मेरे लिए सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर को पाने का अहिंसा के सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है। मैं ईश्वर या सत्य को छोड़कर हिन्दुस्तान की सेवा करना नहीं चाहता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि जो मनुष्य सत्य को छोड़ता है, वह अपने देश को भी छोड़ सकता है। अपने प्रिय से प्रिय संबंधी का भी त्याग कर सकता है।

हम निश्चय करें कि हम सत्य की आराधना नहीं छोंड़ेगे। इस दुनिया में सत्य के पालन का एक मात्र मार्ग सच्ची अहिंसा है। अहिंसा प्रेम का सागर है। उसकी थाह जगत में कोई ले ही नहीं सका। यदि इस प्रेम–सागर में हम सराबोर हो जाए तो सारी दुनिया को अपने प्रेम में आत्मसात कर लेने की उदारता हममें आ सकती है। यह बात कठिन अवश्य है किन्तु साध्य है।

महात्मा के पद की अपेक्षा सत्य मुझे अनन्त गुना प्रिय है। अपने विषय में मैं सिर्फ इतना ही जोर देकर कह सकता हूँ कि अहिंसादि महाव्रतों को पहचानने तथा उनका मन, वचन तथा शरीर से पालन करने का मैं सतत प्रयत्न कर रहा हूँ।

ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया कि सत्य से भिन्न कोई परमेश्वर है। मेरी अहिंसा सच्ची होने पर भी कच्ची है, अपूर्ण है। अतएव हजारों सूर्यों को इकट्ठा करने से भी जिस सत्यरूपी सूर्य के तेज का पूरा आकलन नहीं हो सकता। सत्य की मेरी झांकी उसी सूर्य की केवल एक किरण के, दर्शन के समान ही है। आजतक के अपने

प्रयोगों के अन्त में मैं इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि सत्य का संपूर्ण दर्शन, संपूर्ण अहिंसा के बिना असंभव है।

ऐसे व्यापक सत्यनारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए जीवमात्र के प्रति आत्मवत प्रेम की परम आवश्कता है और जो मनुष्य ऐसा करना चाहता है, वह जीवन के किसी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि सत्य की मेरी पूजा मुझे राजनीति में खींच लाई है। जो मुनष्य यह कहता है कि धर्म का राजनीति से कोई संबंध नहीं है, वह धर्म को नहीं जानता, ऐसा कहने में मुझे संकोच नहीं होता और न ऐसा कहने में मैं अविनय करता हूँ।

यदि सच्चाई प्रकाशित करने से आश्रम में कम लोग रह जाएं तो कोई बात नहीं। पूरा ही बंद हो जाए तो भी कोई बात नहीं है। इसमें से कुछ भी प्रकाशित करते हुए हुए शर्म नहीं आएगी। सत्य को संसार में कहीं भी शर्म नहीं लगती। यदि सत्य शर्माये तो यह जान लेना चाहिए कि वह असत्य है—सत्य नहीं।

सत्य के पालन में ही शांति निहित है। सत्य ही सत्य का पुरस्कार है। सत्य जहाँ सूर्य के समान ताप पहुँचाता है, वहाँ प्राणों का सिंचन भी करता है। एक घड़ी में लिए भी अगर सूर्य तपना बंद कर दे तो यह सृष्टि जड़वत बन जाए। इसी तरह अगर सत्यरूपी सूर्य क्षणभर के लिए भी न तपे तो इस संसार का नाश हो जाए। सच तो यह है कि जिस तरह शरीर के भीतर का मैल बाहर निकलता ही रहता है उसी तरह हम झुठाई को भी संसार में रात दिन देखा करते है। परंतु हम यह कदापि न भूले कि करोड़ों प्राणी स्वभावत ही सत्य का उपयोग करते हैं। मेरा अपना अनुभव तो निरपवाद है और उससे पता चलता है कि मुझमें जो भी निर्मलता रही हो उसका दुरूपयोग आखिर तक कोई नहीं कर सका है। सत्यवचन, सत्य विचार और सत्य आचार के कारण मुसीबतें आई हैं, लेकिन उसके कारण किसी दिन मुझे दुख का अनुभव नहीं हुआ। उनसे मुझे परम सुख और शांति ही मिली है।

जहाँ सत्य है, वहाँ ज्ञान, शुद्धज्ञान ही है। जहाँ सत्य नहीं, वहाँ शुद्ध ज्ञान संभव नहीं। इसलिए ही ईश्वर के नाम के साथ चित्त अर्थात ज्ञान शब्द जोड़ा है और जहाँ सच्चा ज्ञान है वहाँ आनन्द ही होगा। शोक हो ही नहीं सकता और सत्य शाश्वत है तो आनन्द भी शाश्वत होगा। इसी से हम ईश्वर को सच्चिदानन्द के नाम से भी पहचानते है।

हमारा अस्तित्व ही सत्य की आराधना के लिए है। हमारे प्रत्येक काम का वही कारण हो, हमारे प्रत्येक सांस लेने का वही कारण हो, ऐसा करना सीख ले तो दूसरे सभी नियम आसानी से हमारे हाथ आ जाएँ और उनका पालन भी आसान हो जाए। सत्य के बिना किसी भी नियम का शुद्ध पालन असंभव है।

सामान्य तौर पर सत्य अर्थात सत्य बोलना इतना ही हम समझते है किन्तु सत्य वही है जिसका पालन वाणी और आचार में करे। इस सत्य को संपूर्ण रूप में समझ लेने वाले के लिए संसार में और कुछ जानने के लिए नहीं रहता।

किन्तु सत्य जो पारसमणि जैसा है, जो कामधेनु जैसा है, वह कैसे मिले ? अभ्यास और वैराग्य से। सत्य की ही लगन, यही अभ्यास है। उसके बिना दूसरी सभी चीजों के प्रति अतीव, उदासीनता, यही वैराग्य है।

सत्य का, अहिंसा का मार्ग जितना सीधा है उतना ही सकरा है। दो धारी तलवार पर चलने जैसा है वह जिस डोरी पर नजर टिकाकर चल सकता है, सत्य और अहिंसा की डोरी उससे भी सूक्ष्म है। जरा असावधान हुए नहीं कि नीचे गिरे। प्रतिक्षण साधना करने से ही उनके दर्शन हो सकते है।

किन्तु सत्य का संपूर्ण रूप से दर्शन तो इस देह से कर पाना संभव नहीं है, उसकी कल्पना मात्र की जा सकती है। क्षण भंगुर देह द्वारा शाश्वत धर्म का साक्षात्कार संभव नहीं। इसलिए अंत में श्रद्धा का उपयोग तो करना ही पड़ता है।

दुनिया में जहाँ–जहाँ लोगों ने सत्य का मार्ग छोड़ा है, वहाँ वे अपने अंदर अहिंसा आदि गुण को प्राप्त करने की कठिनाईयों से मुक्त हो गए हैं। सत्य का मार्ग छोड़ने में कुछ आनन्द नहीं है पर मनुष्य–स्वाभाव कठिनाईयों का सामना नहीं करता। वह आसान रास्ते की खोज में रहता है। आसान रास्ता नीचे से जाता है, मुश्किल रास्ता उपर उठाता है। जो नियम भौतिक शास्त्र के लिए सही है वही अध्यात्म पर भी लागू होता है।

सत्य शब्द सत् से बना है, सत् अर्थात होना। सत्य अर्थात अस्तित्व। सत्य के सिवा दूसरी किसी चीज से हस्ती ही नहीं। परमेश्वर का सच्चा नाम ही सत् अर्थात सत्य है। इसलिए ईश्वर सत्य है, ऐसा कहने के बदले सत्य ही ईश्वर है यह कहना ज्यादा योग्य है।

भले ही हम राष्ट्रवादी हों, भले ही हम प्रबल देश–भक्त हों लेकिन जिस क्षण हम सत्य और अहिंसा रूपी साधन का सहारा लेते हैं, उसी क्षण हमारी देश भक्ति विश्व प्रेम में परिवर्तित हो जाती है।

मुझे गुह्य विद्याओं से कोई लगाव नहीं है। जीवन की पुस्तक साधारण से साधारण बुद्धि वाले के लिए भी खुली हुई है। ऐसा ही होना भी चाहिए। ईश्वरीय योजना में गुहय कुछ भी नहीं है। सत्य में कुछ भी गोपनीय नहीं है और सत्य ही ईश्वर है।

आश्रम धूल में मिल जाए और मेरी सभी उपास्य मूर्तियाँ खंड–खंड हो जाए तो भी सत्य तो कायम रहेगा ही।

यदि सत्य को तराजू के एक पलड़े पर और दूसरे पलड़े में एक सहस्त्र यज्ञों को रखें तो सत्य का पलड़ा भारी होगा।

सत्य और अंहिसा में मेरी श्रद्धा बढ़ती ही जाती है और मैं अपने जीवन में जैसे–जैसे उन पर अमल करता हूँ मैं भी बढ़ता जाता हूँ। उसी के साथ मेरे विचारों में नयापन आता है। मेरी बुद्धि का विकास होते ही जा रहा है। सत्य और अहिंसा के विषय में नित्य नई–नई चीज उसके सामने आती है और उनमें नया प्रकाश देखता हूँ। रोज नया अर्थ दिखाई देता है।

एक वचन भी सत्य है तो काफी है असत्य वचन कितने भी हों निकम्मे हैं। सत्य वचन की शक्ति वहाँ तक जाती है कि मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ तक ले जाती है।

जिस दृष्टि से मैं सत्य देखता हूँ, उसे ही लिखता हूँ। परम सत्य ही परमेश्वर है। वह अगम्य है। अधिक से अधिक उसके लिए नेति–नेति ही कह सकते हैं। जिस सत्य का हम दर्शन करते हैं, वह सापेक्ष है और बहुरूपी है अनेक है और अपने–अपने समय के लिए अखंडित सत्य है। उसमें दंभ के लिए गुंजाइश ही नहीं है और उसतक पहुँचने का रास्ता एक ही है, वह है अहिंसा। शुद्ध और परम सत्य हमारा आदर्श होना चाहिए उसी का ध्यान करते हुए हम वहाँ पहुँचते हैं और वहीं पहुँचना मोक्ष है।

सत्य बोलने में कहीं किसी अपवाद की गुंजाइश नहीं है।

जब तक सत्य में अविश्वास करने वाले लोग है तब तक इसे (सत्य की महिमा) दुहराते रहना जरूरी है।

अगर मैं विफल भी हो जाऊँ तो इसका मतलब यह नहीं होगा कि साथ ही सत्य भी विफल हो गया। इसे प्रकाश में लाने के प्रयत्न के लिए मुझे जीना है और जरूरत होने पर मिटना है।

सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर को अहिंसा और अहिंसा के सभी अर्थों के माध्यम से खोजा जा सकता है।

उस महान शक्ति को मैं अल्लाह, खुदा या ईश्वर कहकर नहीं पुकारता मैं उसे सत्य कहता हूँ। मेरे लिए सत्य ही ईश्वर है और वह हमारी तमाम योजनाओं का नियामक है। संपूर्ण सत्य तो उस परम शक्ति परमात्मा में निहित है, जो स्वयं सत्य का ही प्रतिरूप है।

मेरा संपूर्ण जीवन ईश्वर की सेवा में समर्पित रहा है। मेरी राजनीति जीवन के गहनतम तथ्यों से असम्बद्ध नहीं है। वह सत्य और अहिंसा के आदर्शों के सामाजिक क्षेत्र में प्रसार या प्रयोग करने के लिए ही है। आजादी तक के लिए इनका सौदा करने की मैं इनका प्रचार करते हुए अपने प्राण त्याग दूँगा ।

तराजू के एक पलड़े में सत्य और दूसरे पलड़े में सभी गुण उनसे भी अधिक कुछ रखेंगे तो भी सत्य के पलड़े का वजन ज्यादा है। यह अनुभवी लोगों का वचन है और इस विषय में कभी शंका न करें।

व्यभिचार की अपेक्षा असत्य ज्यादा खराब है। कई बार दुनिया जिसे व्यभिचार समझती है वह व्यभिचार न भी हो। लेकिन झूठ तो तीनों काल में झूठ ही है और उसके मूल में असंख्य पाप भरे पड़े है। एक विधवा पुनर्विवाह करे तो शायद व्यभिचार माना जाए, लेकिन विधवा खुले आम किसी के साथ विवाह करे तो उसमें बिल्कुल व्यभिचार नहीं होगा।

सत्य का अर्थ है मन—वचन व कर्म से सत्य का पालन करना। जब मैं कहता हूँ कि मैं सत्य के लिए देश न्यौछावर कर दूँगा तो इसका अर्थ यही होता है कि देश की सेवा केवल सत्य से की जा सकती है।

जिस तरह की सविनय अवज्ञा प्रह्लाद ने की थी, वैसी ही हमें भी करनी है। जैसे प्रह्लाद ने अपने पिता की आज्ञा का सविनय भंग करते हुए सत्य को नहीं छोड़ा। वैसे ही हम भी सत्य को नहीं छोड़ सकते। प्रह्लाद ने अपने पिता को कष्ट देने का तनिक भी ख्याल नहीं किया, वैसा ही हमारा व्यवहार भी होना चाहिए।

समस्त आदर्शों पर यही बात लागू होती है। मनुष्य जैसे—जैसे सच्चा बनता जाता है, वैसे—वैसे सत्य उससे दूर भागता है। क्योंकि वह समझ जाता है, उसने जल्दी से जिसे सत्य मान लिया, वह वस्तुतः असत्य था। अतएव सत्य का आचरण करने वाला सदाचारी मनुष्य हमेशा नम्र होता है, अपने दोषों को वह निरंतर अधिकाधिक समझता जाता है।

ज्ञान का अर्थ है आत्मा का अनुभव। जिसने सत्य और अहिंसा का पूर्ण रूप से विकास कर लिया है, वह निरक्षर होते हुए भी पूर्ण ज्ञानी है।

अहिंसा

अहिंसा का अर्थ होता है—प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा।

भारत को अहिंसा पर चलने की सलाह देने का मेरा कारण यह नहीं है कि वह निर्बल है, बल्कि यह है कि उसे अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्य का भान है। जिन ऋृषियों ने अहिंसा धर्म की खोज की थी, वे न्यूटन से अधिक प्रतिभा संपन्न थे। वे शस्त्रों का प्रयोग करना जानते हुए भी उनकी व्यर्थता जान गए थे और इसी कारण उन्होंने त्रस्त संसार को यह शिक्षा दी थी कि उसे मुक्ति हिंसा से नहीं अहिंसा से मिल सकती है।

हमारा मानव समाज अपनी समस्त विभिन्नताओ के साथ देखने वाले को एक सुंदर समष्टि के रूप में दिखना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब अपनी भिन्नताओ के बावजूद हम एक दूसरे के प्रति प्रेम रखना और परस्पर सहिष्णुता बरतना शुरू करें। अतः यद्यपि मैं विवेकशून्य कटट्रवादिता में निपट जड़तापूर्ण अज्ञान देखता हूँ, फिर भी उस कट्टरता के प्रति असहिष्णु नहीं बनता। इसीलिए मैंने दुनिया के सामने अहिंसा का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। मेरा मानना है कि जो व्यक्ति इस धरती पर धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहता है और इसी जन्म में इस पृथ्वी पर आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसे हर रूप में, हर प्रकार से अपने हर कृत्य में अहिंसक रहना चाहिए।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है न मारना। किन्तु मरे लेखे उसका अर्थ व्यापक है। यदि मैं उसका अर्थ न मारना करता तो यह शब्द मुझे जिन ऊँचे, अनन्त ऊँचे मनोमय लोकों तक ले जाता है उनतक मैं कभी नहीं पहुँच पाता। अहिंसा का वास्तव में यह अर्थ है कि आप किसी का मन न दुखाऐं। जो अपने को आपका शत्रु मानता है, उसके बारे में भी कोई अनुदार विचार मन में न रखें। क्योंकि जो

व्यक्ति अहिंसा का सिद्धांत मानता है, उसके लिए तो किसी को अपना शत्रु मानने की गुंजाइश ही नहीं है—वह शत्रु का अस्तित्व मानता ही नहीं है। किन्तु ऐसे लोग हो सकते हैं जो उसे अपना शत्रु माने, इसमें तो उसका कोई वश नहीं है।

सत्य और अहिंसा ही हमारे ध्येय हैं। 'अहिंसा परमो धर्मः' इससे भारी शोध दुनिया में दूसरा नहीं है। जब तक हम संसार के व्यवहारों में रहते हैं, जब तक हमारी आत्मा का व्यवहार शरीर के साथ रहता है, तब तक कुछ न कुछ हिंसा हमसे होती ही रहती है, पर जिस हिंसा को हम छोड़ सकते हैं, उसे छोड़ देनी चाहिए। जिस धर्म में जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिए कि उस धर्म में उतना ही ज्यादा सत्य है।

जब कोई पुरूष यह कहता है कि मैं अहिंसापरायण हूँ तब उससे यह आशा की जाती है कि यदि उसे कोई हानि पहुँचाए तो वह उसपर क्रोध न करे, उसका नुकसान न चाहे, बल्कि उसकी भलाई ही चाहे। न वह उसके प्रति अनर्गल प्रलाप करेगा और न उसे किसी तरह की शारीरिक चोट ही पहुँचाएगा। इस तरह अहिंसापूर्ण निर्दोषता की अवस्था है और पूर्ण अहिंसा का अर्थ है। प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव। इसलिए अहिंसा में मनुष्य से नीचे की कोटि के प्राणियों यहाँ तक कि हानिकारक कीड़े—मकोड़े और पुशओं का समावेश है। उनकी सृष्टि हमारी विनाशक प्रवृतियों का पोषण करते रहने के लिए नहीं हुई है। यदि हम सृष्टि कर्त्ता के हेतु को समझ पाते तो हमें इस बात का पता लग जाता कि उसकी सृष्टि में उन जीवों का उचित स्थान क्या है? अतएव अहिंसा का क्रियात्मक रूप क्या है ? प्राणिमात्र के प्रति सदभाव। यही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दुशास्त्र, क्या बाइबिल और क्या कुरान सब जगह मुझे तो यही दिखाई पड़ा है।

अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी एक लक्ष्य की ओर स्वाभावतः परंतु अनजाने बढ़ रही है। मनुष्य जब अपने तई

निर्दोषता की साक्षात मूर्ति बन जाता है, तब वह कुछ दैवी पुरूष नहीं हो जाता। उसी अवस्था में वह सच्चा मनुष्य बनता है।

अहिंसा से मेरा आशय कायरता से नहीं है मेरा निश्चित मत है कि यदि विकल्प केवल कायरता और हिंसा के बीच हो तो हिंसा चुनी जानी चाहिए तथापि मैं क्षमाशीलता को वीरता का भूषण मानता हूँ।

अहिंसा और सत्य समस्त धर्मों के समकोण है। जो आचार इस कसौटी पर खरा न उतरे वह त्याज्य है। इसमें कोई भी शंका नहीं कर सकता। अधूरे आचार की इजाजत चाहे जो हो किन्तु अहिंसा धर्म पालन करने वाले को तो निरंतर जागरूक रहकर अपने हृदय की बात को बढ़ाते और प्राप्त छूटों के क्षेत्र को संकुचित करते ही जाना चाहिए। भोग में धर्म है ही नहीं। संसार का ज्ञान पूर्वक त्याग ही मोक्ष प्राप्ति है। संसार का पूर्ण त्याग हिमालय के शिखर पर चले जाने में भी नहीं है। हृदय की गुफा सच्ची गुफा है, उसमें छिपकर और सुरक्षित रहता हुआ मनुष्य संसार में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहकर अनिवार्य प्रवृतियों में भाग लेते हुए विचरण कर सकता है।

अहिंसा का अर्थ है—प्रेम, दया, क्षमा। अहिंसा एक महाव्रत है। वह तलवार की धार पर चलने से अधिक कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आने पालन करना असंभव ही माना जाएगा। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ है—त्याग और ज्ञान।

सबसे बड़ी ताकत जो मानव को प्रदान की गई है वह है अहिंसा। सत्य उसका एकमात्र लक्ष्य है। क्योंकि ईश्वर सत्य से इतर और कुछ नहीं है। लेकिन सत्य की प्राप्ति अहिंसा के अतिरिक्त और किसी उपाय से नहीं हो सकती।

जो गुण मानव और अन्य सभी पशुओं के बीच का अंतर स्पष्ट करता है, वह है मानव में अहिंसक रह सकने की क्षमता, और मानव जिस हद तक अहिंसा का पालन करता है, उसी हदतक अपने लक्ष्य

के निकट तक पहुँचता है, उससे आगे नहीं। निस्सन्देह उसको कई और गुण भी प्रदान किए गए हैं। परंतु यदि वे मुख्य गुण अर्थात अहिंसा की भावना के विकास में मदद नहीं देते तो वे उसे पशु से भी निचले उस स्तर तक घसीट कर ले जाने का काम ही करते है जिस स्तर से वह अभी–अभी उठकर आया है।

अहिंसा का मार्ग अन्य सभी मार्गों की अपेक्षा कठिन है। सत्य मार्ग नहीं, वह तो ध्येय है। वहाँ तक पहुँचने का एकमात्र मार्ग अहिंसा है। अतः यह आसान हो भी कैसे सकता है। अभी तो हम विचारों की अहिंसा तक भी नहीं पहुँच सके हैं। कभी–कभी जब हमें अपना धर्म दीपक की भाँति स्पष्ट दिखाई देता है, तब भी उसका पालन करने की शक्ति भी हममें नहीं होती। ऐसी स्थिति में इतना ही बहुत है कि यथा–शक्ति आचार और विचार में अहिंसा की रक्षा करें और आनन्द से रहें।

अहिंसा को जिस स्थूल रूप में आज हम देखते है, अहिंसा वैसी स्थूल नहीं है। किसी को न मारें यह तो अहिंसा है ही, किन्तु कुविचार मात्र हिंसा है, उतावली हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी के अहिंत की कामना हिंसा है। जिसकी जरूरत जगत को है उसपर अधिकार कर लेना भी हिंसा है।

मेरा रास्ता साफ है। हिंसात्मक कामों में मेरा उपयोग करने का कोई प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। मेरे पास कोई गुप्त उपाय नहीं है। मैं सत्य को छोड़कर किसी कूटनीति को नहीं जानता। मेरा एक ही अस्त्र है–अहिंसा। संभव है कि मैं अनजाने कुछ देर के लिए गलत रास्ते भटका लिया जाऊँ। किन्तु यह हमेशा के लिए नहीं चल सकेगा।

मदान्ध होकर दूसरों पर आक्रमण करने की अपेक्षा ऐसी परिस्थिति में अहिंसावादी सुधारक अन्तर्मुख हो जाता है। वह परिस्थिति विशेष में फंसे हुए सारे लोगों में एक ही भगवान का दर्शन करता है और

अपने विरोधियों के तथा स्वयं अपने उद्धार के लिए तपाचरण करने लगता है। बुराई से जुझता हुआ उसमें फँसे सारे लोगो का सहायक बनता है ।उसकी विनम्रता उसमें शक्ति का संचार करती रहती है। यह विनम्रता ही हमारे शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक बल को विश्रृंखलित करने की बजाय सुगठित करती है। यों भौतिक दृष्टि से इस विशाल विश्व में हमारी कोई हस्ती नहीं है। विश्व में, ब्रह्माण्ड में, तारा ग्रह सूर्य, इत्यादि में हमारा स्थान कितना नगण्य है।

मैं ऐसा मानता हूँ कि अहिंसा धर्म जिस मूल मान्यता से उत्पन्न होता है, वह यह है कि एक की उन्नति में सबकी उन्नति है और एक की अधोगति में सबकी अधोगति है।

अहिंसा के मानी है प्रेम का समुद्र, अहिंसा के मानी है वैरभाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरूता नहीं होती, डर–डर कर भागना भी नहीं होता, अहिंसा में तो दृढ़ता, वीरता, अडिगता, होनी चाहिए।

अगर अहिंसा धर्म सच्चा धर्म हो तो हर तरह व्यवहार में उसके आचरण का आग्रह करना भूल नहीं, बल्कि कर्त्तव्य है। व्यवहार और धर्म के बीच विरोध नहीं होना चाहिए। धर्म विरोधी व्यवहार छोड़ देने योग्य है। जहाँ दया नहीं वहाँ अहिंसा नहीं। दया अहिंसा की कसौटी है, अहिंसा का मूर्त रूप है। अतः यों कह सकते हैं कि जिसमें जितनी दया है, उसमें उतनी ही अहिंसा है। मुझ पर आक्रमण करने वाले को न मारूँ, उसमें अहिंसा हो भी सकती है और नहीं भी। डर कर उसे अगर न मारूँ तो यह अहिंसा नहीं हो सकती है। दयाभाव से ज्ञानपूर्वक न मारने में ही अहिंसा है।

अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है। कायरता सबसे बड़ा दुर्गुण है। विशुद्ध अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता, कायरता सदा पतित बनाती है।

किन्तु अहिंसा के बिना सत्य की शोध असंभव है। अहिंसा और सत्य एक दूसरे से उसी तरह संलग्न है जैसे एक सिक्के के दो पहलू। फिर भी अहिंसा को साधन माने और सत्य को साध्य । साधन अपने हाथ की बात है, इसी से अहिंसा परम धर्म हुआ। सत्य ईश्वर हुआ। साधन की चिन्ता करें, तो किसी दिन साध्य के दर्शन तो होंगे ही। इतना निश्चय किया, तो मानो जग को उस हद तक जीत लिया। हमारे मार्ग में चाहे जो संकट आएँ, वाह्य दृष्टि से देखते हुए हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई पड़े तो भी हम विश्वास न छोड़ें और एक यही मंत्र जपे कि सत्य ही सब कुछ है—वही ईश्वर है, उसका साक्षात्कार करने का एक ही मार्ग है, एक ही साधन है—और वह है अहिंसा। मैं उसे कभी नहीं छोडूँगा जिस सत्य रूपी ईश्वर के नाम यह प्रतिज्ञा की है, वही इसका पालन करने का बल दें।

अहिंसा दुर्बल का नहीं, बलवान का शस्त्र है। अहिंसा का अर्थ है—अपराध को क्षमा करना और बदला न लेना। क्षमा वीरस्य भूषणम्।

अहिंसा कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह हृदय का सर्वोत्तम गुण है और उसे प्रयत्नपूर्वक पा लेने पर ऐसा मालूम होता है कि वह स्वाभाविक गुण है, सचमुच वह वैसा ही है और प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति को आश्चर्य होता है कि उसे पाने में उसे किसी प्रकार का कष्ट क्यों उठाना पड़ा। हमारे भीतर का पशु कहता है कि घूसे के बदले घूसे से बढ़कर स्वाभाविक और क्या है? और हमारे अंदर बैठा हुआ मनुष्य कहता है कि घूसा मारने वाले को क्षमा करने से बढ़कर अधिक स्वाभाविकता और अधिक मानवता और क्या है?

अहिंसा का मतलब अपने प्रति कृपण और दूसरों के प्रति उदार।

'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात' यह व्यवहारिक वचन नहीं सिद्धांत है। प्रियम् का अर्थ है अहिंसक। अहिंसक के बारे में ऐसा हो सकता है कि बोलते समय वह कठोर लगे परंतु परिणाम में वह अमृतमय लगना ही चाहिए। यह अहिंसा की अनिवार्य कसौटी है।

जिस व्यक्ति के मन में अहिंसा पालन करने का उत्साह है उसे चाहिए कि वह अपने ह्रदय में झाँके और अपने पड़ोसी की ओर देखे। यदि उसके मन में द्वेष भरा हो तो वह समझ ले कि अहिंसा की प्रथम सीढ़ी ही नहीं चढ़ पाया है और अपने पड़ोसी के प्रति, साथी के प्रति अहिंसा का व्यवहार नहीं करता। वह अहिंसा से हजारों योजन दूर है।

यदि मुझमें अहिंसा सचमुच होगी तो उसकी छूत लगे बिना हरगिज नहीं रहेगी। मुझे अपने पर कम श्रद्धा है, लेकिन अहिंसा पर अटूट श्रद्धा है। जगत ने इस महान सिद्धांत को जान तो लिया है परंतु उसका आचरण बहुत थोड़ा किया गया है। मुझे तो रोज उसके नए घूँट पीने को मिलते हैं, क्योंकि मेरे लिए तो वही कल्पवृक्ष है। इस दुनिया में मेरे लिए और कुछ संभव नहीं है, क्योंकि सत्यनारायण से मिलने का दूसरा कोई मार्ग मुझे मिला ही नहीं और उसके मिले बिना जीवन व्यर्थ लगता है। इसीलिए अहिंसा का मार्ग कठिन हो या सरल—मुझे तो उसी मार्ग से जाना है। यदि मेरी मृत्यु के बाद मारकाट ही मच जाए तो समझना कि मेरी अहिंसा अत्यल्प अथवा झूठी थी। अहिंसा का सिद्धांत कभी झूठा नहीं हो सकता। अथवा यह भी हो सकता कि अहिंसा सिद्ध करने से पहले हमें रक्त की वैतरणी से गुजरना पड़े।

मनुष्य जति के पास जो सबसे बड़ी शक्ति है वह अहिंसा ही है। बुद्ध की जैसी अहिंसा का परिणाम तो चिरकाल कायम रहता है, इतना ही नहीं बल्कि समय के साथ—साथ बढ़ता जाता है। उस पर जितना अमल होता है, वह उतना ही पुरअसर और अक्षय सिद्ध होता है और अंत में सारा संसार हक्का—बक्का होकर चिल्ला पड़ता है कि अरे यह तो चमत्कार हो गया।

अहिंसा भाव से ओत—प्रोत होने के लिए हमें ईश्वर में जीवन्त श्रद्धा होनी चाहिए। फल की तनिक भी आशा किए बिना निरंतर सेवा करते रहने से ही मन में अहिंसा का भाव उदय होता है। इसमें मनुष्य

सिर्फ अपना अर्पण करता चला जाता है और यह अपना पुरस्कार आप है, निष्काम भाव से की गई सेवा केवल मित्रों के लिए नहीं होती बल्कि शत्रुओं के लिए भी होती है।

अहिंसा एक उच्चतम कोटि का क्रियाशील सिद्धांत है। यह आत्मिक बल या हमारे भीतर स्थित ईश्वरत्व की शक्ति है। अपूर्ण मनुष्य उस समूचे सारतत्व को समझने में असमर्थ है। वह तो उसकी पूरी–पूरी ज्वाला को सह भी नहीं सकता–किन्तु जब उसका एक अत्यन्त सूक्ष्म अंश भी हमारे भीतर सक्रिय हो उठता है, तो अद्भुत परिणाम दिखाता है। आकाशवासी सूर्य समूचे विश्व को अपनी जीवनदायिनी ऊष्मा से भर देता है, किन्तु अगर कोई उसके बहुत निकट पहुँच जाए, तो उसे जलाकर भस्म कर देगा। ठीक यही बात ईश्वरत्व की है। हम जिस हद तक अहिंसा को अपना लेगे उस हद तक हम ईश्वर जैसे होंगे किन्तु हम पूरी तरह भगवान तो बन ही नहीं सकते। अहिंसा का असर रेडियम जैसा है। शरीर के किसी घातक रूप से अभिवृद्ध अंग में यदि रेडियम का अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ा डाल दिया जाए, तो वह लगातार चुपचाप और अनवरत रूप से तब अपना असर करता रहता है, जब तक मांस के समूचे रोग ग्रस्त कोशों की परत स्वस्थ नहीं बन जाती। इसी प्रकार सच्ची अहिंसा का छोटा सा अंश चुपचाप, सूक्ष्म और सदृश्य रूप से अपना काम करके समूचे समाज को प्रभावित कर देता है।

युग बदलता है और व्यवस्थाएँ जर्जर हो जाती है। अन्ततः केवल अहिंसा और अहिंसा पर आधारित वस्तुएँ ही चिरस्थायी होंगी।

हम अपने मित्रों और अपनी बराबरी के लोगों से प्रेम करते हैं। परंतु एक निर्दय तानाशाह के प्रति हमारे मन में प्रतिक्रिया हिंसात्मक होने पर भय की और अहिंसात्मक होने पर दया की होती है। अहिंसा भय नहीं जानती। यदि मैं सच्चा अहिंसावादी हूँ तो मुझे तानाशाह पर दया आएगी और मैं कहूँगा कि उसे ज्ञान नहीं है कि मानव को कैसा होना चाहिए।

हर हालत में अहिंसा को मुक्ति का साधन बनना चाहिए। परंतु आपकी उसमें जीवन्त आस्था होनी चाहिए। आपके चारो ओर जब घटाटोप अंधेरा हो, तब भी आपको आशा नहीं छोड़नी चाहिए। जो व्यक्ति अहिंसा में विश्वास करता है, वह एक जीवन्त ईश्वर में विश्वास करता है, वह पराजय नहीं स्वीकार करता है।

अहिंसा का मतलब है–असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ कष्ट सहन की असीम क्षमता है।

जिसमें सच्ची अहिंसा की वृति है, उसे असहाय महसूस करने की जरूरत नहीं है। हिंसा के आगे असहाय महसूस करना, अहिंसा नहीं कायरता है। अहिंसा को कायरता से गडमंड नहीं करना चाहिए।

आपकी अहिंसक वृति आपको ऐसा बना देगी, जिससे उस उदण्ड व्यक्ति के दुव्यर्वहार का आप पर कोई असर ही नहीं होगा और फलतः वे अपमान जनक शब्द उसके मुँह सीमित रह जाएँगे और आप उनसे अछूते रहेंगे।

अहिंसा अगर व्यक्तिगत गुण है, तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है वह करोड़ों की है। मैं तो उनका सेवक हूँ।

अहिंसा एक सक्रिय शक्ति है क्या तुम यह महसूस नहीं करते कि जब अहिंसा का बोलवाला होता है, तो भौतिकतावादी का स्थान गौण हो जाता है, रास्ते बदल जाते हैं और अहिंसक युद्ध में श्रम संपत्ति व नैतिकता की बरबादी नहीं होती।

आप मेरे पास यदि यह कहते हैं कि–आपने अहिंसा की प्रतिज्ञा ले लिया था, इसके लिए बहनों की रक्षा नहीं कर सके, तो मैं आपको माफ नहीं करूँगा। अहिंसा को कायरता का ढाल तो हरगिज नहीं बनाना चाहिए। वह तो बहादुरों का हथियार है। ऐसे जुल्मो को बेबसी से देखते रहने की अपेक्षा तो मैं यह ज्यादा पंसद करूँगा कि आप हिंसक तरीके से लड़ते–लड़ते मर मिटे। सच्चा अहिंसक पुरूष ऐसे

अत्याचारों की कहानी कहने को कभी जिन्दा नहीं रहेगा। वह तो अहिसंक तरीके से जुझते हुए अपनी जानपर खेल जाएगा—मर मिटेगा।

यदि हम अपने शरीर को सत्य के पालन और परोपकार के निमित्त अनुकूल बनाना चाहते हैं तो हमें पहले ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य आदि गुणों को विकसित करके अपनी आत्मिक उन्नति करनी चाहिए। अहिंसा का अर्थ होता है—प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा।

प्रेम

प्रेम ही मानव जीवन का सर्वोपरि और अनुपम धर्म है। बुराई का प्रतिकार न करने का सिद्धांत प्रेम के अनुशासन का ही दूसरा नाम है। भारतीय, चीनी, हिब्रू, यूनानी, रोमन—संसार के सभी दार्शनिक मतों ने इसी प्रेम—धर्म को प्रचारित किया है।

सभी समझदार इंसानों को यह बात समझ लेनी चाहिए कि प्रेम ही जीवन का मूलभूत तत्व है। प्रेम—धर्म को स्वीकार करना और हर प्रकार की हिंसा का त्याग करना ही एक मात्र शांति और सत्य को पाने का रास्ता है।

मेरी दृष्टि में सत्य और प्रेम एकार्थ वाची शब्द है। अर्थात जिसे हम सत्य कहते हैं, उसी को प्रेम भी कह सकते हैं। विश्वास और आशा बड़ी चीज है। सफलता के लिए ये दोनों अपरिहार्य हैं, किन्तु प्रेम उनसे भी बड़ी चीज है। प्रेम में धीरज होना ही चाहिए ।

सत्याग्रह विशुद्ध आत्मिक शक्ति है। आत्मा सत्य का स्वरूप है। अज्ञान से हमें कोई कष्ट देगा तो हम प्रेमभाव से जीत लेंगे।

मैं मनुष्य और देवता की वाणी बोलू पर मुझमें प्रेम न हो तो मैं ढोल या खाली घड़े के समान हूँ। भले ही मैं भविष्य वाणी कर सकूँ, मुझ पूर्ण ज्ञान हो, मुझमें पर्वतों को खिसका सकने की श्रद्धा हो पर प्रेम न हो तो मैं तिनके के बराबर हूँ अगर में अपना सबकुछ गरीबों को दे दूँ और अपना शरीर भी जला डालूँ पर मुझमें प्रेम न हो तो मेरे कार्य से कुछ भी लाभ न होगा।

प्रेम बहुत सहन करता है। जहाँ प्रेम है वहाँ दया है। प्रेम में द्वेष की गुंजाइश ही नहीं, प्रेम में अहमभाव नहीं, प्रेम में मद नहीं, प्रेम में अयोग्यता नहीं, प्रेम स्वार्थी नहीं, प्रेम जल्दी नहीं चिढ़ता, प्रेम को दुष्टविचार नहीं आते, प्रेम अन्याय से प्रसन्न नहीं होता। प्रेम सत्य से ही प्रसन्न रहता है, प्रेम सबकुछ सहन करता है, सबकुछ मान लेता है। प्रेम आशामय है। सब कुछ सह लेता है। भविष्यवाणी झूठी हो जाती है, वाचा बंद हो जाती है और ज्ञान का नाश हो जाता है पर प्रेम कभी निष्फल नहीं होता।

मीरा जी को प्रेम की कटारी गहरी लगी थी। प्रेम की वैसी कटारी हमारे भी हाथ लगे और हममें उसे भोंकने का बल आ जाए तो हम दुनिया को हिला दें।

अगर मुझे ऐसा लगे कि मैं इस संसार में प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकूँगा तो मुझे जीवन में बिल्कुल दिलचस्पी न रहे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमारी प्रेम की सामर्थ्य सतत बढ़ती जाती है। प्रक्रिया बहुत धीमी जरूर है, जो आदमी हमें अच्छा काम करने से भी रोके, उससे हम कैसे प्रेम कर सकते है? फिर भी ऐसे ही अवसरों पर हमारी सच्ची परीक्षा होती है।

प्रेम रस जहाँ भी हाथ लगे—चोरी द्वारा भी—पी लेना, वैसे ही जैसे द्वारिका के उस ग्वाले ने पिया था। जितना पियोगे उतना तुम्हारा आनंद बढ़ता जाएगा और तुम्हारा हेतू पूर्ण होगा।

जहाँ प्रेम है, वहीं जीवन है, प्रेम रहित जीवन मृत्यु के समान है। प्रेम उसी सिक्के का दूसरा पहलू है, जिसका पहला पल्लू सत्य है। मेरा दृढ़ विश्वास है और चालीस वर्ष का अनुभव है कि सत्य और प्रेम से सारा संसार जीता जा सकता है। सत्य ही धर्म है, यह एक

सिद्धांत है, प्रेम ही धर्म है, यह दूसरा सिद्धांत। धर्म कोई दो नहीं होते। इसलिए सत्य ही प्रेम और प्रेम ही सत्य है।

समस्त मानवों के प्रति प्रेम की अनूभुति आत्मा के विकास की ऊँची अवस्था है। परंतु प्रत्येक जीवधारी के प्रति प्रेम की अनुभूति इससे भी अधिक ऊँची अवस्था है।

मैं तो ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ सत्य ही ईश्वर है। मेरी दृष्टि से तो ईश्वर को पहचानने का एक अचूक साधन अहिंसा अर्थात प्रेम है।

मैं तो प्रेमाग्रही हूँ। यदि प्रेममूर्ति होता तो गालियां लिख देता। श्रीकृष्ण, को माखन चोर और लुटेरा आदि विशेषणों से गोपियाँ ही संबोधित कर सकती है। नरसिंह मेहता तो श्रीकृष्ण जैसे अखण्ड ब्रह्चारी को व्यभिचारी कहते है और श्रीकृष्ण उसकी गालियाँ खाकर उनकी ओर से दहेज देने का इंतजाम करते हैं।

संसार प्रेम के नियम से ही संचालित होता है–हम इस नियम को कोई दूसरा नाम भी दे सकते हैं। बस यह याद रखना है कि यह ऐसा तत्व है जो हमें एक दूसरे के प्रति खींचता है और हमें बांधकर एक बनाता है। मृत्यु के रहते हुए भी जीवन का प्रवाह कायम है। ध्वंस का क्रम निरंतर चल रहा है, उसके बावजूद सृष्टि का क्रम बना ही हुआ है। असत्य पर सत्य की विजय होती है। प्रेम घृणा पर विजयी होता ही है और ईश्वर शैतान के विरूद्ध सदा विजय पाता रहता है।

यह खुदा का कलाम है–वेद का वाक्य है, बाइबिल का लेख है कि मनुष्य मात्र एक दूसरे का बंधु है। हर एक धर्म पुकार–पुकार कर कहता है कि प्रेम की ग्रंथि से ही जगत बंधा हुआ है। यदि प्रेम का बधंन न हो तो पृथ्वी का एक–एक परमाणु छिटक जाए और पानी का बिन्दु–बिन्दु अलग हो जाए। इसी प्रकार यदि मनुष्य मनुष्य के बीच प्रेम न होगा तो वह मृतप्राय हो जाएगा।

"रामहि केवल प्रेम पियारा जानि लेहु जो जान निहारा" में प्रेम का अर्थ है–राम की सृष्टि पर जो प्रेम करता है वह राम से प्रेम करता है।

दुनिया में आज इतने लोग जिन्दा है इससे सिद्ध होता है कि संसार की नींव शस्त्रबल पर नहीं टिकी है। करोड़ों परिवार के छोटे–छोटे झगड़े प्रेम भावना में डूब जाते है।

हमारे स्नेह में धैर्य और विनयपूर्ण संकोच होनी चाहिए। अपने प्रेम में प्रदर्शनशील तो वे हो सकते हैं जिनके पास पैसा हो और जिन्हें अवकाश का अभाव नहीं है। जैसा कि स्वाभाविक है प्रेम प्रकट करने का तरीका उनसे भिन्न और बेहतर है। सच्चा प्रेम अपने को बाहर तो तभी प्रकट करता है, जब उसकी अनिवार्य आवश्यकता होती है। वह इस बीच मूक रहकर दिन प्रतिदिन और निरंतर वृद्धिगत होता रहता है।

प्रेम एक ऐसी जड़ी बूटी है कि कट्टर दुश्मन को भी मित्र बना देती है और यह बूटी अहिंसा से प्रकट होती है। सुसुप्त अवस्था में जिस चीज का नाम अहिंसा है, जागृतावस्था में उसी का नाम प्रेम है।

प्रेम तो शक्ति का निचोड़ है। जब भय का सर्वथा अभाव हो तभी प्रेम का मुक्त प्रवाह हो सकता है। प्रेमी जनों द्वारा दी गई सजा तो आत्मा पर ठंढे मरहम के समान है।

घृणा हमें मारना सिखाती है और प्रेम मरना। जो कुछ प्रेम से मिलता है। वह नित्य रहता है, जो घृणा से मिलता है, वस्तुतः भार सिद्ध होता है।

प्रेम को कभी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें धैर्य और कष्ट सहन की क्षमता होती है और प्रेम का अर्थ है। सेवा इसलिए जो प्रेम करता है वह सदा सेवा में ही सुख मानता है।

मैं सच्चे और निःस्वार्थ प्रेम प्राप्त करने के लिए सारी दुनिया न्यौछावर कर दूँगा।

मैं जानता हूँ मेरे अंदर बहुत प्रेम है पर प्रेम की सीमा ही कहाँ है? मैं यहाँ भी जानता हूँ कि मेरा प्रेम असीम नहीं है। मैं सांप के साथ कहाँ खेल पाता? मुझे पूरा विश्वास है कि अहिंसा मूर्ति के सामने सांप भी शांत हो जाता है।

मनुष्य तो चेतन प्राणी है, यंत्रवत जड़ नहीं। इसी कारण हर मनुष्य के कार्य में भिन्नता, नवीनता और विरोधामास आदि होते ही हैं। किन्तु जहाँ सत्य और प्रेमरूपी दो दिव्य मार्गदर्शक हो वहाँ सूक्ष्मदर्शी पुरूष भिन्नता में अभिन्नता, विरोध में अविरोध और अनेकता में एकता के दर्शन किए बिना नहीं रहता। जिस प्रेम में सहिष्णुता नहीं, वह प्रेम ही नहीं है।

जहाँ शुद्ध प्रेम होता है, वहाँ अधीरता की गुंजाइश नहीं होती। शुद्ध प्रेम दैहिक नहीं बल्कि आत्मिक ही होता है। दैहिक प्रेम तो विषय भोग ही है। आत्मिक प्रेम में किसी तरह का बंधन आड़े हाथ नहीं आता। परंतु इस प्रेम में तपश्चर्या हाती है और धैर्य तो इतना होता है कि वह मृत्यु पर्यन्त वियोग की भी परवाह नहीं करता।

यह संसार प्रेम के बंधन से बँधा हुआ है। इसलिए वह चल रहा है। इतिहास में एक दूसरे के प्रति प्रेम–भाव रखने के नित्य प्रंसगों की चर्चा नहीं होती है उसमें झगड़ा–फसाद और मार–धाड़ का ही वर्णन मिलता है। दुनिया में एक दूसरे के साथ प्रेम–व्यवहार की घटनाओं की तुलना में लड़ाई–झगड़े की घटनाएँ बहुत कम होती है। संसार में हम इतने गाँवों और शहरों को बसा हुआ देखते हैं। यदि संसार में हमेशा लड़ाई ही होती रहती तो इन गाँवों और शहरों का अस्तित्व ही नहीं रहता।

प्रेम–पंथ पावक की ज्वाला! जब शुद्ध प्रेम पैदा होता है तब मलिनता का नाश करता है। वैरभाव की उपमा उस अग्नि से दी जा सकती है जो सब कुछ जलाकर राख कर देती है। प्रेम ऐसा कैसे हो सकता है? वैरभाव दूसरों को जलाता है, प्रेम स्वयं को जलाता है और दूसरों को शुद्ध करता है।

सच्ची अहिंसा या प्रेम, ह्रदय में पैदा होता है, जिस प्रकार स्वर्ण अपने गुणों से पहचाना जाता है, उसी प्रकार प्रेम भी मनुष्य के आचरण में प्रकट होता है। प्रेम पूरित मनुष्य यह कभी नहीं भूलता कि जैसा जीवधारी वह है वैसे ही संसार में असंख्य जीवधारी भरे हुए हैं। और वह इस बात की बड़ी सावधानी बरतता है कि कहीं उसके हाथों किसी प्राणी को हानि न पहुँचे। वह जिन लोगों से मिलता है उनकी आँखों में अपने प्रेम की झलक पाता है। वह सभी का मित्र है। जिस प्रकार बिल्ली अपने बच्चे को बिना चोट पहुँचाए दाँतों से पकड़कर उठाती है, उसी प्रकार प्रेम का पुजारी अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों से व्यवहार करता है। वह दबे पांव बिना आहट किए चलता है ताकि उसके पदचाप से दूसरों की नींद में बाधा न पड़े। जिनको जरूरत हो, उनके लिए वह हमेशा स्थान कर देता है। वह अपनी वाणी का स्वर सदैव इतना संयमित रखता है कि दूसरों के कानों को वह खटके नहीं। बोलने की जरूरत न होने पर वह मौन रहता है। वह दूसरों को दुख पहुँचाने वाली कोई बात नहीं कहता। जो व्यक्ति सभी जीवधारियों के प्रति प्रेमभाव से भरा हुआ है और जिसके मन वचन और कर्म में एकता है, वही सचमुच महान है।

प्रेम की कोई सीमा नहीं होती। मेरे राष्ट्र–प्रेम में विश्व के सभी राष्ट्रों के प्रति मेरा प्रेम सम्मिलित है। उनके अपने धार्मिक विश्वास चाहे जो कुछ हो।

प्रेम का बंधन बढ़ते ही जाता है, फिर भी बंधन नहीं लगता।

प्रेम मूक होता है। वह कोई शिकायत नहीं करता। प्रेम अंधा भी होता है, वह कोई दोष नहीं निकालता। प्रेम बहरा भी होता है, वह कोई बहाने नहीं सुनता। प्रेम हमेशा देता है कभी माँगता नहीं। प्रेम सदा एक सा होता है सुख या दुख की घड़ी में वह घटता बढ़ता नहीं। प्रेम कभी आहत नहीं होता, प्रेम कभी थकता नहीं।

मेरी दृष्टि में सत्य और प्रेम एकार्थवाची शब्द है अर्थात जिसे हम सत्य कहते हैं, उसी को प्रेम भी कह सकते हैं। विश्वास और आशा बड़ी चीज है। सफलता के लिए ये दोनों अपरिहार्य हैं। किन्तु प्रेम इनसे भी बड़ी चीज है। प्रेम में धीरज होना चाहिए।

आचरण

यह मानना कि उपदेश देने का बड़ा प्रभाव है, हमारा मिथ्या मोह है। हम अनंत काल से यही अनुभव करते आ रहे हैं कि उपदेश का प्रभाव बहुत ही कम होता है। आज सैकड़ों साधु उपदेश दे रहे हैं। सैकड़ों ब्राह्मण नित्य 'गीता' और भागवत आदि का पाठ कर रहे हैं। लेकिन कहा यही जा सकता है कि उसका कुछ भी असर नहीं होता। यह सच है कि उपदेश का कुछ असर होता हुआ हम देखते हैं लेकिन वह असर उसके उपदेशक का नहीं, बल्कि उसके चारित्र्य का होता है। यदि वह जितना आचरण कर सकता है, उससे अधिक का उपदेश देता है तो उसका कुछ भी असर नहीं होता। सत्य की ऐसी ही महिमा है। हम उसे भाषा के आवरण में कितना ही ढाँके, वह ढँक नहीं सकता।

आचार अर्थात जो मानो सो करो–आचार की यह व्याख्या मुझे ठीक मालूम होती है।

मुझसे भूल हो और लोगों को मालूम हो जाए तो उससे उनको हानि के बजाय लाभ ही होगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मैं अपनी भूलों को तुरंत स्वीकार कर लेता हूँ। मैंने यह अनुभव किया है कि इससे मुझे अवश्य ही लाभ हुआ है और जनता को भी लाभ हुआ है।

हमें माता–पिता के चारित्र्य की जो विरासत प्राप्त होती है, वही सच्ची विरासत है। यह आध्यात्मिक विरासत कहलाती है। इसमें

वृद्धि करना हमारा धर्म है। पिता एक लाख रूपया छोड़ गया हो और पुत्र उसके दस लाख बनाए तथा कहे पिता ने कैसे केवल एक लाख रूपये ही इकट्ठे किए, जबकि मैं इतना चतुर हूँ कि मैंने दस लाख रूपये इकट्ठे किए, तो ऐसा कहने वाला पुत्र कुपुत्र कहलाएगा, क्योंकि उसके उस कथन में अभिमान है। हमें तो माता–पिता की सम्पत्ति की विरासत में वृद्धि करनी है, तथापि हमें अभिमान नहीं करना चाहिए।

मनुष्य का सौन्दर्य उसके नैतिक आचरण में है। पशु की सुन्दरता उसके भीतर से आंकी नहीं जाती है। गाय को देखकर हम कहते हैं कि इसकी चमड़ी देखो, इसके बाल देखो, इसके पैर देखो, इसके सींग देखो। लेकिन मनुष्य के बारे में ऐसा नहीं कहा जाता। मनुष्य की सुन्दरता का आधार तो उसका हृदय है, उसकी धन संपत्ति नहीं। यहाँ आश्रम में मैंने हृदय के गुणों का विकास करने को ही धर्म माना है। हम खाते–पीते हैं। ईंट–चूने के मकान बनवाते हैं, लेकिन हम ऐसा विवश होकर करते हैं। हमने मिट्टी के मकान की अवमानना नहीं की है मिट्टी के मकान में रहकर हम लज्जित नहीं होते। हम तो वैभव में डूबे हुए हों तो शरमाते हैं। हम अपने वैभव में वृद्धि करते हों तो हमें शर्म से सिर झुका लेना चाहिए। हाँ सेवा के लिए हमारे पास अवश्य धन हो सकता है। ऐसे धन का संग्रह हमें लाचारी से करनी पड़ती है। लेकिन कितने ही व्यक्ति तो अपने लोभ को ही धर्म मानकर धन का संग्रह करते हैं। यह बात ठीक नहीं है। हम बाह्य प्रपंच का जितना प्रसार करते हैं आंतरिक विकास उतना ही कम होता है और इसलिए धर्म की हानि होती है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने आचरण के नियम स्वयं निश्चित करने चाहिए और फिर पूरी सख्ती के साथ उनके अनुसार ही अपना जीवन चलाना चाहिए। किसी के साथ अपनी तुलना करना बिल्कुल गलत है और इस तुलना के आधार पर अपने पापकर्म को उचित नहीं ठहराना चाहिए।

उस मनुष्य का सुन्दर वचन जो स्वयं तदनुसार आचरण नहीं करता वैसे ही निरर्थक हैं जैसे कि सुन्दर रंग वाला निर्गन्ध फूल।

हमें अपना आचरण केवल अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही नहीं, बल्कि यह देखते हुए भी निर्धारित करना चाहिए कि इसका दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

जितनी गहराई में जाए, जितनी शांति रखें, उतना ही अहिंसा और सत्य का अर्थ स्पष्ट होता जाता है और उनकी परम उपयोगिता दिखाई देती जाती है। मुझे लगता है कि हम उनका जितना आचरण करते हैं, ईश्वर से उतना ही साक्षात्कार होता जाता है। इसके बाहर ईश्वर साक्षात्कार की बात काल्पनिक है, मेरा ऐसा विश्वास दृढ़ होता जाता है।

सत्य की साधना से हमें आचार शुद्धि की सीख मिलती है। इससे हम समाज के छोटे से छोटे काम और अपने रोज के काम में भी ज्यादा सावधान हो जाते हैं। सत्य की आराधना करते हुए हम प्रार्थना में हाजिर होकर शांत रहें और एकाग्रचित्त होने का प्रयत्न करें। नवीनता भजनों में या पाठ की जाने वाली सामग्री में नहीं होती, नवीनता तो हमारी शुद्धि की वृद्धि में होती है। हमारा संतोष रोज बढ़ना चाहिए, हमारी शांति रोज बढ़नी चाहिए। ऐसा अनुभव न हो तो दोष प्रार्थना का नहीं, बल्कि हमारे अन्तस में स्थित असत्य का है।

शरीर की उत्पत्ति पाप में है फिर भी वह आत्म–दर्शन का साधन बनकर पुण्य–क्षेत्र हो सकता है। जो नित्य आसुरी–वृतियों से जूझता है, उसने इसे पुण्य–क्षेत्र बना लिया है।

हमारे साथ रहने वाले असत्य बोलें या असत्य आचरण करें और हम उसे प्रोत्साहन दें या उल्टे सीधे ढंग से उसका लाभ उठायें तो हम भी उस असत्य के भागीदार बन जाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। इसी से तुलसीदास जी ने सत्संग खोजने का उपदेश दिया है।

बुरे विचारों और वृतियों के खिलाफ शेर की तरह जूझना हमारा धर्म है। जीत होना ईश्वर के हाथ में है। हमारा संतोष जूझने में ही है। हमारा जूझना सच्चा होना चाहिए।

हजारो मन तर्क की अपेक्षा तोलाभर आचरण की कीमत अधिक है।

बुरे विचार हमेशा आने का ही नाम है–अपने आप बनाया हुआ नरक। बुरे विचार मनुष्य को आते है, मगर जैसे घर में कूड़ा करकट भर जाने पर जो व्यक्ति उसे समय–समय पर निकालता रहता है, उसके लिए कहा जाता है कि वह साफ है और अपना घर साफ रखता है, उसी तरह कुविचार के आते ही उन्हें निकालता रहे तो उसकी सदा जय ही है वह कभी दंभी नहीं कहलाता। इस दंभ से बचने का मेरा स्वर्ण उपाय यह है कि हमें इन विचारों को कभी नहीं छिपाना चाहिए। डोडी न पीटें किन्तु किसी मित्र को जरूर बता दें।

जो व्यक्ति सत्य का पालन करना चाहता है, उसके मन में एक भी ऐसा विचार नहीं आना चाहिए जिसे गुप्त रखना पड़े। उसके बेहूदे विचार को भी संसार जान जाए तो उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। चिन्ता तो कलुष विचारों की होनी चाहिए; पाप की होनी चाहिए।

विचित्र प्रकृति के लोगों के साथ रहने के लिए मौन अत्यन्त आवश्यक है।

संसार कब सुधरेगा ? मेरा अनुभव तो यह कहता है कि समस्त संसार ठीक ढंग से कैसे चले, इसका विचार करने से बेहतर तो यह है कि हम स्वयं ठीक ढंग से कैसे चल सकते हैं। संसार सरल गति से चलता है कि उल्टा, सो हम नहीं जानते लेकिन यदि हम सीधा चलते हैं तो अन्य लोग भी हमें सीधे जान पड़ेगें अथवा सीधा चलने का मार्ग खोज सकेंगे।

मैं तो ऐसा कोई तरीका नहीं जानता जिससे मनुष्य को नेक बनाया जा सकता हो लेकिन अगर किसी हद तक उसे नेक बनाना

संभव भी है तो वह व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करके ही किया जा सकता हैं।

जो तुझे सत्य लगे उसे निधड़क होकर करते चले जाओ भले ही उसमें भूल भी हो। यदि तुममें भूल दिखे तो उसे सुधार लो और यदि नहीं दिखे तो भले ही तुझे मरना पड़े, तूँ कंगाल हो जाए, तब भी तुझे अपने मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए। ऐसा करते हुए किसी पर दोष न करना, असत्याचरण न करना, अशांत न होना, धीरज न खोना और जो संकट आए तो सहन करना। अपूर्ण पिता के संरक्षण में शांति की खोज करने की अपेक्षा पिता के पिता अथार्त पूर्ण परमेश्वर के संरक्षण में शांति की खोज करो।

जीवन एक उच्चाकांक्षा है। उसका ध्येय पूर्णता अथार्त आत्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना है। अपनी निर्बलताओं या अपूर्णताओं के कारण हमें आदर्श नीचा नहीं करना चाहिए। मुझमें निर्बलता और अपूर्णता दोनों ही है। मुझे उनका दुखद भान है। अपनी उन निर्बलताओं और अपूर्णताओं को दूर करने में सहायता देने के लिए सत्यरूप ईश्वर के समक्ष मेरे हृदय से मूक पुकार प्रतिक्षण उठती रहती है।

हमारे अंदर प्रकाश और अंधकार, सत्य और असत्य, राम और रावण के बीच शाश्वत संग्राम चल रहा है। यह युद्ध तो हमें अपनी ताकत भर जारी रखना ही है पर हमें अपनी मर्यादाओं को हमेशा ध्यान रखना होगा। अर्जुन अपनी मर्यादाओं को भूलने ही वाला था कि भगवान श्रीकृष्ण ने उसे ऐसा करने से रोका। अहिंसा जीवन का नियम है, पर यदि मैं सांप से डरता हूँ तो उस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है ? मन से तो मैं पहले ही सांप का वध कर चुका—सिर्फ मेरी शारीरिक निर्बलता ही बाधा दे रही है।

विगत काल कितना ही पापपूर्ण या खराब रहा हो मनुष्य को उसके ऊपर कभी शोक नहीं करना चाहिए। विगतकाल की याद तो

तभी उपयोगी होगी, जबकि उससे लाभ उठाया जाए। हमने यदि कुछ अच्छे काम किए हैं तो और अच्छे काम करें और खराब काम किए हो तो उनकी पुनरावृति न होने देने के लिए पूरी शक्ति से प्रयास करें।

मेरे लिए तो सदाचार, नैतिक—नियम और धर्म एक ही बात है। आदमी अगर पूरी तरह से सदाचारी हो परन्तु धार्मिक न हो तो उसका जीवन बालू पर खड़ी की गई इमारत की तरह समझिए। इसी तरह सदाचार हीन धर्म भी दूसरों को दिखाने के लिए होता है और आपस में सिर फुटौवल का कारण बनाता है। सदाचार में सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य तीनों आते हैं। मनुष्य जाति ने आजतक के जितने नियमों का पालन किया है, वे सब इन तीन सर्वप्रधान गुणों से संबंधित हैं या उन्हीं से प्राप्त हुए थे और दूसरी ओर अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य की उत्पत्ति सत्य से होती है और सत्य मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

हमेशा लक्ष्य यही रखो कि मन, वचन और कर्म का मेल साधना है। सदा विचार शुद्ध रखने का ध्यान रखो, फिर सब ठीक हो जाएगा विचार में जितनी सार्मथ्य है उतनी किसी और वस्तु में नहीं। शब्द से कर्म होता है और विचार से शब्द। दुनिया एक महान विचार का ही फल है, जहाँ विचार शुद्ध और महान होता है, वहाँ फल भी सदा महान और शुद्ध होता है।

समर्थ व्यक्ति बहुधा न करने योग्य काम करके भी बेदाग छूट जाते हैं। इस संबंध में यदि हम उनकी आलोचना करने लगे तो किसी को भी हमारी बात जँचेगी नहीं। इसीलिए तुलसीदास जैसे व्यक्ति ने भी लिखा है—'समरथ को नहिं दोष गुसाई'। इस लौकिक उक्ति में जीवन का तथ्य ठीक—ठीक निहित है। लेकिन बड़े चाहें जो करें उससे हमें क्या लेना देना। जो लोग अपने दोषों पर पर्दा डालने के लिए बड़ों के दुष्कर्मो की ओट लेते हैं, उन्हें क्या उत्तर दे सकते हैं।

तुम हमेशा गलतियाँ करती रहो क्योंकि गलतियाँ करके तो अपना विकास कर सकती हो लेकिन मजबूरी में रहकर कभी नहीं ।

जीवन में नित्य जो घटनाएँ होती हैं, उनमें असत्य और बेइमानी की ही विजय होती है, ऐसा मेरा अनुभव नहीं है। हमें ऐसे दृष्टांत सहज ही मिल सकते हैं जहाँ इनकी विजय हुई हो, लेकिन गहराई में जाने पर हम देखेंगे कि सच्ची विजय तो सत्य की ही होती है। यदि सत्य की विजय हमेशा स्वयं सिद्ध ही हो तो फिर उसकी क्या कीमत रह जाएगी? और सत्य का पालन करने का क्या लाभ होगा? इसी से वेद के समकक्ष माने जाने वाले ईशोपनिषद में यह मंत्र आता है कि सत्य का मुँह हिरण्यमय पात्र से ढँका हुआ है, उसके तेज से हमारी आँखे चकाचौंध हो रही हैं।

मैं अक्सर कहता रहा हूँ कि अगर साधनों की फिक्र रखी जाए तो ध्येय अपनी फ्रिक खुद कर लेगी।

मनुष्य को अपने दोषो को नहीं गुणों का चिन्तन करना चाहिए क्योंकि मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, वैसा बनता है। इसका अर्थ यह नहीं कि दोष देखें ही नहीं। देखें तो जरूर, लेकिन उसका विचार करके पागल नहीं बनें।

मुझे यदि अपने आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचने का अनवरत प्रयत्न करना है तो मुझे चाहिए कि संसार को अपनी निर्बलताएँ और निष्फलताएँ भी देखने दूँ। ताकि मैं दंभ से बच जाऊँ और शर्म के मारे भी इस आदर्श को प्राप्त करने की यथा शक्ति साधना करूँ।

यदि मनुष्य मात्र इतना करे कि उसे जो मार्ग दिखाई दे उसका ईमानदारी से अनुसरण करे तो क्रमशः सत्य तक अवश्य पहुँच जाएगा।

हम अपना जीवन विचारमय करें, काम कम करना है तो कम करें लेकिन जो करें जहाँ तक बन पड़े वहाँ तक संपूर्ण करें।

अगर हम सच्चा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, तो मानसिक आलस्य छोड़कर हमें मौलिक विचार करना होगा। परिणाम यह होगा कि हमारा जीवन बहुत सरल हो जाएगा।

आदमी में अपने को धोखा देने की शक्ति, दूसरों को धोखा देने की शक्ति से बहुत अधिक है, इस बात का प्रमाण प्रत्येक समझदार आदमी है।

मेरी धारणा है कि मनुष्य रोज आगे बढ़ता है या पीछे हटता है कभी एक जगह स्थिर नहीं रहता। समस्त संसार गतिमान है। इसमें कोई अपवाद नहीं है, कोई चीज इस नियम से परे नहीं है। इसलिए अगर मैं यह दावा करूँ कि मैं जैसा कल था वैसा ही आज हूँ या वैसा ही रहूँगा तो यह दावा झूठा है। मुझे ऐसा मोह भी नहीं रखना चाहिए।

जब कोई तुम्हें झूठा कहे या मुखालिफत करे तो गरम मत हो जाओ शांति से अपनी बात कहना है तो कह दो। शायद मौन सबसे बेहतर है। किसी के झूठे बनाने से तुम झूठे नहीं बनते, अगर तुम सच्चे हो।

मैं मानसिक पक्ष को ज्यादा महत्व देता हूँ। हम जैसा सोचते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। विचार तब तक पूरा नहीं होता जब तक उसे कर्म में अभिव्यक्ति न मिले और कर्म विचारों को मर्यादित कर देता है और जब इन दोनां के बीच पूर्ण संगति होती है तभी जीवन संपूर्ण और स्वाभाविक होता है।

करोड़ों लोगों के पाप करने पर भी यदि दो लोग पूर्णतया पवित्र हों तो उनका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। हाँ एक बात है इन दो व्यक्तियों की परीक्षा भी खूब होती है। यह तो वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति बाजार से थाली खरीदने जाता है तो उसे ऊपर से ही देखकर खरीद लेता है। लेकिन वहीं व्यक्ति यदि सोने की थाली खरीदने जाता है तो थाली को अच्छी तरह कसकर देखता है कि सोना खरा है अथवा नहीं। इसके बाद उस थाली को अपने जीवन की भाँति यत्न से रखता है। हजारों जगह पर इस थाली को जाँच करवाता है यही अंतर पवित्र और अपवित्र आत्मा में है और ईश्वर पवित्र आत्मा की

बहुत ज्यादा परीक्षा करता है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद भगवान ऐसे व्यक्ति को प्राणों से भी अधिक मूल्यवान समझता है। करोड़ों अन्य लोग पाप करते हैं यह सोचकर हमें भी पाप नहीं करने लगना चाहिए। हम पूर्ण रूपेण शुद्ध हों तो उसका असर अवश्य पड़ेगा।

जो मनुष्य अपने आप बँध जाता है वहीं बंधन मुक्त हो जाता है। बिना पतवार का जहाज स्वतंत्र नहीं है, इधर–उधर टकराता है और आखिर किसी कगार से टकराकर टूट जाता है। वह समुद्र की लहरों की दया पर चलता है। उसी तरह जो मनुष्य पहले से ही अपनी मर्यादा निश्चिय कर लेता है वह जीवन रूपी तुफानी समुद्र से जूझता है और शांत रह सकता है।

पढ़े के अनुसार ही आचरण करके हम पढ़ाई को लोकप्रिय बना सकते है।

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है "अच्छे व्यक्ति को अपने जीवन में कर्म करते हुए, मुझे मन में रखना चाहिए। यह एकदम सच है। जब हमें कोई देखने वाला नहीं होता तो वह हमारे दोषों और गुणों को ध्यान से देखता है और उसका लेखा–जोखा रखता है। हमारे गुणों का कोई महत्व नहीं है। क्योंकि वे तो उसमें होने ही चाहिए। हमारे दोषों के कारण हमारे ॠण बढ़ते जाते हैं। इसलिए सावधान रहो।

दुख और आनन्द, प्रसन्नता और कष्ट, निस्संदेह हमारे कुछ पिछले वर्षों का फल है, जो स्वयं हमने किए हैं। इस तरह का चिन्तन हमें अपने कष्टों को बिना भय या घबराहट के सहने की क्षमता प्रदान करता है। हमें जो कष्ट मिल रहा है, वह वास्तव में कष्ट नहीं बल्कि ईश्वरीय अनुशासन है। यदि घोर अपराध करने पर उतारू किसी व्यक्ति को कोई साँप काटकर उसे अपना काम करने से रोक दे, तो साँप का काटना उसके लिए वरदान हो जाता है।

अगर थप्पड़ मारने वाले आदमी को आप माफ करने की उदारता नहीं दिखा सकते तो बदले में आप भी उसे थप्पड़ लगा दें इसे मैं समझ सकता हूँ। लेकिन थप्पड़ मारने वाले के भाग जाने के बाद उसके रिश्तेदार, जाति या मजहब में किसी दूसरे आदमी को मारकर थप्पड़ का बदला चुकाना इन्सानियत के खिलाफ है।

दूसरों की नजर में हम कैसे लगते है, इस बात का विचार करना छोड़कर यदि हम यह समझने लगें कि हमारे लिए क्या हितकर है तो हम संसार के अनेक झंझटों से बच जाएँगे। दूसरों को रिझाने के लिए या उनकी नजरों में अच्छे जँचने की खातिर हम जाने और अनजाने में कितनी ही कृत्रिम उपाय करते रहते हैं और परिणाम स्वरूप दुखी होते हैं।

जो व्यक्ति एक उत्तम कार्य प्रारम्भ करना चाहता है उसे किसी के आशीर्वाद की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए। देश के बड़े से बड़े आदमी के आशीर्वाद की भी नहीं। एक उत्तम कार्य में अपना आशीर्वाद खुद निहित रहता है।

हर आदमी के गुणों को ढूँढ़ना और उनपर विचार करना और जब दोष दिखाई दे तो यही सोचना कि जगत में कोई भी चीज दोष रहित नहीं होती है।

आत्मशुद्धि

बिना आत्मशुद्धि के जीव मात्र के साथ ऐक्य सध ही नहीं सकता। आत्मशुद्धि के बिना अहिंसा–धर्म का पालन सर्वथा असंभव है। अशुद्ध आत्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ है। अतएव जीवन–मार्ग के सभी क्षेत्रों में शुद्धि की आवश्यकता है। यह शुद्धि साध्य है। क्योंकि व्यक्ति और समष्टि के बीच ऐसा निकट का संबंध है कि एक ही शुद्धि अनेकों की शुद्धि के बराबर हो जाती है और व्यक्तिगत प्रयत्न करने की शक्ति तो सत्यनारायण ने सबको जन्म से ही दी है।

लेकिन मैं प्रतिक्षण यह अनुभव करता हूँ कि शुद्धि का यह मार्ग विकट है। शुद्ध बनने का अर्थ है मन से वचन से, काया से निर्विकार बनना। राग–द्वेषादि से रहित होना। इस निर्विकारता तक पहुँचने का प्रतिक्षण प्रयत्न करते हुए भी मैं पहुँच नहीं पाया हूँ। इसलिए लोगों की स्तुति मुझे भुलावे में नहीं डाल सकती।

भटके नवयुवकों को–

किसी भी पवित्र कार्य में असफलता स्वीकार मत कीजिए और सबसे पक्का इरादा कर लीजिए कि आप जरूर पवित्र बनेंगे और ईश्वर आपकी अवश्य सुनेगा। लेकिन ईश्वर न तो घमण्डी लोगों की प्रार्थना सुनता है न उनकी जो उसके साथ सौदेबाजी करते हैं। क्या आपने गजेन्द्र मोक्ष की कहानी सुनी है? यह संसार की एक महानतम कविता है। लाचार का सहारा ईश्वर है। यदि आपको उससे सहायता माँगनी है तो आप सच्चे रूप में बिना किसी शर्त के उसके पास जाइए और अपने मन में ऐसा कोई भय और संदेह भी मत रखिए कि आप जैसे पतित व्यक्ति की वह मदद कैसे कर सकता है? जिसने अपनी शरण आने में करोड़ों लोगों की मदद की है, वह ईश्वर भला

क्या आपको छोड़ देगा? वह किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करता और आप देखेंगे कि वह आपकी हरेक प्रार्थना को सुनेगा। यहाँ तक कि दूषित व्यक्ति की प्रार्थना का भी जबाव मिलेगा। यह सब मैं आपको अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर बता रहा हूँ । मैं शुद्धि प्रक्रिया में गुजर चुका हूँ। पहले प्रभु की कृपा प्राप्त करिए उसके बाद हर वस्तु आपको प्राप्त हो जाएगी।

सभी बातों की औषधि आत्मशुद्धि है। यदि आत्मा मात्र एक है तो विश्वास रखो कि आत्मशुद्धि से पूरे संसार का अकल्याण होता है। आत्मशुद्धि का अर्थ है तप।

आत्मशुद्धि के यज्ञ में प्रार्थना की भूमिका बहुत बड़ी है और आप अपने को इसमें जितना अधिक लगाएँगे, आप अपने दैनिक जीवन में निर्भयता का उतना अधिक अनुभव करेंगे क्योंकि निर्भयता आत्मशुद्धि का लक्षण और प्रतीक है। मैं किसी भी ऐसे आदमी को नहीं जानता जो आत्मशुद्धि की राह पर चलते हुए भय की भावना से ग्रस्त रहा हो।

भावना तो हृदय की होती है। यदि हम हृदय को शुद्ध न रखें तो भावना हमें गलत रास्ते पर ले जा सकती है। हृदय शुद्ध रखना अथवा घर तथा घर की हर चीज को साफ रखने जैसा है। हृदय वह स्रोत है जिससे भगवान का ज्ञान मिलता है। यदि स्रोत ही दूषित हो तो अन्य हर उपाय व्यर्थ है और यदि उसका विशुद्ध होना निश्चित हो तो किसी अन्य चीज की जरूरत नहीं है।

आत्मनिन्दा का उपयोग तो इतना भर होना चाहिए कि हम प्रगति कर सकें। भूतकाल में हमारे हाथों जो दोष हुए हों और आज हम उन्हें न कर रहे हों तो उनका बार–बार चिन्तन करके आत्मा का उत्पीड़न करने का अर्थ तो दोष की वृद्धि करने के समान ही है। सत्य के पुजारी को अपने महादोष को प्रकट कर देना चाहिए और उसके बाद मन पर किसी प्रकार का बोझ नहीं पड़ना चाहिए।

अपने अथवा प्रियजनों के दोष न छुपाने की जो आदत मुझे वर्षों से पड़ी हुई है। उसका मुझे पश्चाताप नहीं हैं। उससे उन व्यक्तियों का और दूसरों का कल्याण ही हुआ है। मैंने अपने स्वर्गवासी पिता के दोष नहीं छिपाये, अपनी धर्मपत्नी के नहीं छिपाये और न अपने लड़कों के। मेरे दोष तो सभी पाठकों को कंठ है। जिन दोषों को भूल जाने की संभावना है उन्हें भी चुन चुन कर कोई सदभाव से और कोई केवल निंदा करने के लिए याद कराते रहते हैं। अपने दोषों को प्रकट करने से मैं उन्हें फिर न करना सीख चुका हूँ। दोष करके मनुष्य छिपकर निर्दोष दिखने के लिए चाहे जैसा प्रयत्न करें, उसमें वह सफल नहीं हो सकता। ईश्वर जिन दोषों को देखता है, उन्हें उसकी सृष्टि क्यों न देखे? जो अपने दोषों से सचमुच शरमाता है वह तो उसे प्रगट करके सुरक्षित रहेगा और अपने साथियों को इस तरह अपना रक्षक बनाएगा। इसी का नाम ईश्वर पर निर्भर रहना मान सकते है। अपनी निर्बलता कबूल करने से इन्द्रिय जनित विकारों से छूट सकते हैं। इसी से दोष का प्रगट करना शुद्धि की पहली सीढ़ी है।

असहयोग शरीर बल अथवा घृणा पर आधारित नहीं है। यह तो आत्मशुद्धि का आंदोलन है। इसलिए इसमें अत्याचारी को अपनी भूल का एहसास कराकर सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया जाता है।

मनुष्यता

हमलोगों में बदला लेने की जो टेक है, वह अशोभनीय है और सब धर्मों के विरूद्ध है। हम अपने नुकसान पहुँचाने वाले को नुकसान पहुँचाए तो इससे दोनों की हानि होती है।

अगर हम जुल्म करने वाले के जुल्म के आगे न झुकें तो वह जुल्म नहीं कर सकता। साधारणतया कोई व्यक्ति मुझे अपने दिल–बहलाव की खातिर लात नहीं मारेगा। ऐसा करने का कोई न कोई सबब होगा। यदि मैं उसकी इच्छा के विरूद्ध चलूँ तो वह उसे मनवाने के लिए मुझे लात मारेगा। यदि मैं उसकी लात खाकर भी न मानूँ तो फिर मुझे वह मारना बंद कर देगा। वह बंद करे या न करे मुझे उसकी परवाह नहीं होगी। उसकी आज्ञा न्यायपूर्ण नहीं है। मेरे लिए तो इतना काफी है। गुलामी अन्यायपूर्ण आज्ञा मानने में है, लात खाने में नहीं। लात खाने पर भी हम बदले में लात न मारे यही सच्ची वीरता और मनुष्यता है।

यदि कुछ लोग शक्तिभर परिश्रम नहीं करते, चीजों की बरबादी करते हैं अथवा झगड़े करते हैं तो इसमें निराश नहीं होना है। जो समझदार हैं, उन्हें इस दोष को दूर करने के लिए दुगुना प्रयत्न करना है।

जिस प्रकार मैं गाय को पूजता हूँ, उसी प्रकार मनुष्य को पूजता हूँ तो क्या गाय के लिए मैं किसी मुसलमान के प्राण ले लूँ। हाँ गाय पर यदि दया है तो मैं अपने प्राण दे दूँ। यदि मेरा भाई गाय को मारने दौड़े तो मैं क्या बरताव करूँगा? उसके पैर पड़ूंगा तो फिर मुसलमान भाई को पैर पकड़कर मनाना चाहिए। हिन्दू भी मांसाहारी है इसी से उन्हें भी अहिंसक नहीं कहा जा सकता, वे भी गाय बैल को कष्ट पहुँचाते हैं।

हमलोग एक महान प्रयत्न में लगे हुए हैं। तत्व ज्ञान का अनुसंधान कर रहे है। यह नहीं कि किसी नई वस्तु की खोज की जा रही है। हम प्रयोग इस बात की कर रहे हैं जो मनुष्य ज्ञान को आत्मसात करना चाहते हैं, उनका आचार–व्यवहार कैसा होना चाहिए। बरसों की लगी दीमक साफ करनी है। इसमें विघ्न तो आने ही हैं। इन सब विघ्नों को ईश्वर दूर करेगा ही क्योंकि हमारी वृति शुद्ध हैं

ऊँचा उठने के लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। लेकिन ऊँचे उठ जाने पर तुम्हें असीम प्रकाश मिलेगा। यह बड़े साहस का काम है। तुम यह काम करने में समर्थ हो क्योंकि आत्मा के गुण सर्वत्र एक से हैं जिन आवरणों ने आत्मा को ढँक रखा है, उनको हटाने पर तुम अपनी शक्ति स्वयं देख सकोगे। उसकी कुंजी यम–नियम है।

सर्प को मारने में पाप है लेकिन उसकी अपेक्षा मनुष्य शरीर धारी सर्प अथवा बाघ को मारने में अधिक पाप है। पशु–बाघ को हम भयवश मारते हैं, क्रोध से प्रेरित होकर नहीं। यदि वास्तव में कोई धर्मराज है और वह सारे पाप–पुण्य का निर्णय करता है तो वह बाघ को मारने वाले व्यक्ति पर दया खाकर कदाचित उसे माफ कर देंगे क्योंकि उसमें उस व्यक्ति ने अपने पशुधर्म का ही पालन किया, एक पशु ने दूसरे पशु को मार डाला। लेकिन मनुष्य की हत्या करने में तो क्रोध का भाव होता है, अभिमान होता है, दंभ होता है। धर्मराज कहेगा–"अरे मूर्ख तूने अमुक मनुष्य की हत्या की तो उसके पीछे तो न जाने कितनी खटपट, कितना पाखंड रहा होगा।

अधिकतर मनुष्य की आत्मा सुप्तावस्था में रहती है। मनुष्य और पशु में इतना ही भेद है कि मनुष्य की आत्मा संपूर्ण रूप से जागृत हो सकती है। अगर हम निन्यानबें अवसरों पर दुनियाँ के साथ चलते हैं तो सौवें अवसर पर कह सकते हैं कि वह सही नहीं है। जन्म के साथ ही जो दुनिया के साथ वैर बाँध लेता है वह प्रेम कैसे कर सकता है।

यदि मैं करोड़ों पीड़ित और मूक भारतीयों के कष्ट का अनुभव न करूँ तो अपने आपको इंसान नहीं मानूँगा।

यदि अपने सद्भावनाओं के प्रति मेरा कर्त्तव्य है तो जो लोग हाड़ और और चाम की ठठरी मात्र रह गए हैं उन्हें देखकर उनके प्रति अपने कर्त्तव्य भी याद आना अनिवार्य है। दया, करूणा और प्रेम जैसी कोई वस्तु संसार में है अथवा नहीं। यदि है तो जो पुरूष और स्त्री भूख से छीज–छीजकर मर रहे हैं और जिनके पास तन ढकने का लगभग वस्त्र है ही नहीं क्या मैं उनसे यह कह दूँ कि आखिरकार आप अपने पूर्वजन्म के कर्मों का ही फल भोग रहे हैं। क्या उनके प्रति मेरा कोई फर्ज नहीं है? हमको पराई क्या पड़ी, क्या यही आदमी की सेवा है?

मेरे मत में दुनिया में कोई जगह या जाति ऐसी नहीं जहाँ और जिसे उपयुक्त अवसर मिले या उचित शिक्षा दी जाए तो सुन्दर से सुन्दर मानव पुष्प न खिल सके।

मनुष्य नम्रता और उच्चता का सम्मिश्रण है और उसकी उच्चता उसकी नम्रता में निहित है। यदि उसमें नम्र बनने की शक्ति न हो तो उसे उँचा उठा हुआ, नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालत में पुरूषार्थ की भी गुंजाइश नहीं रहती। इसलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने कारण किसी भी प्राणी को दुख नहीं देता और जीवमात्र के लिए स्वयं दुख उठाने को तैयार रहता है वही आत्मदर्शन करने योग्य बन जाता है।

प्राचीन महाकाव्य हमारे सामने जिस धर्म को प्रस्तुत करते हैं, वह समाज को नीतिवान बनाए रख सकता है। उसे भली–भाँति समझा जाना चाहिए और तदनुसार आचरण किया जाना चाहिए। हमारी परम्परा एक जीवन्त परम्परा है और इसमें प्रत्येक व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण के द्वारा विकास करते रहना चाहिए। कर्म सिद्धांत का वास्तविक अर्थ सारे दुष्कर्मों को निकाल फेंकना है। जो अपने सब दुष्कर्मों का हिसाब नहीं रखता, वह मानव जाति में गिने जाने योग्य नहीं है।

रोटी के लिए तरसते लोगों के सामने धर्म परोसना तो उनका उपहास करना होगा। यदि मैं या आप उनके सामने ईश्वर की बात करेंगे तो वे हमें दुष्ट और बदमाश कहेंगे। यदि वे किसी ईश्वर को जानते है तो उस ईश्वर को जो उनके लिए त्रास का कारण बना हुआ है। उन पर अपना क्रोध उतारता रहता है और जो निष्ठुर और आततायी हैं उन्होंने अपनी सारी शर्म हया नहीं छोड़ी है। मगर मैं सच कहता हूँ, हमने छोड़ दी है। हम इतने सारे कपड़े पहन कर भी नंगे हैं, उन्होंने कोई कपड़ा न पहन कर भी अपने को ढँक रखा है।

हमें दूसरों के हिमालय से दोषों को राई के समान छोटा और अपने राई से दोषों को हिमालय के समान बड़ा समझना चाहिए। अपने भीतर यदि तनिक सा दोष का अनुभव हो अथवा हमसे जाने अनजाने असत्याचरण का दोष हो गया हो तो दिल में पश्चाताप की आग सुलग उठनी चाहिए। सर्प या बिच्छू का डंक तो कुछ नहीं है, उनका जहर उतारने वाले तो बहुत मिल सकते हैं, परंतु असत्य और हिंसा के दंश से बचाने वाला कौन है? ईश्वर ही हमें उससे मुक्ति दे सकता है।

शरीर को तीर्थ–क्षेत्र समझकर उसकी सार सँभाल करने में कोई पाप नहीं है। उसे भोग की वस्तु समझकर सहेजना महापाप है।

जो आदमी अपने मनोविनोद के लिए दूसरो के दुखदर्द का बहुत कम ख्याल रखता है। वह निश्चय ही मनुष्य नहीं है, मनुष्य से कुछ कम है, अर्थात वह बुद्धिहीन–विचारहीन है।

यदि कोई मनुष्य यह सोचकर किसी निंदनीय कार्य को करने में हिचकचता है कि मेरे इस कार्य की पड़ोसी निन्दा करेंगे तो वह मनुष्य सभ्य कहा जाएगा।

मनुष्य का समय एक दूसरे की भूलों को ठीक करने में ही चला जाता है। जो मनुष्य ऐसा काम निःस्पृह रहकर कर सकता है उसके लिए यह श्रम व्यर्थ नहीं होता। यह उसकी साधना है और

उसी के द्वारा वह ईश्वर का साक्षात्कार करता है और इसी का नाम संसार है।

यह बात मेरी कल्पना से परे है कि मनुष्य–मनुष्य के बीच बैर कायम रह सकता है और मैं पुनर्जन्म को मानता हूँ, इसलिए मैं यह भी आशा रखता हूँ कि इस जन्म में नहीं तो किसी और जन्म में समस्त मानव जाति को प्रेम–पाश में बाँध सकूँगा।

दुनिया में मनुष्यता को तीन गुणों की आवश्यकता है। तीन गुण–गुणज्ञता, आशा और प्रेम। जिनमें सत्यादि की कद्र नहीं, जो अच्छी चीज को पहचान नहीं सकते, वे अपने घमंड में फिरते हैं और आत्मानंद नहीं पा सकते। इसी तरह जिनमें आशावाद नहीं यानी, जो ईश्वर के न्याय के बारे में शंका रखते हैं। उनका हृदय कभी प्रफुल्लित नहीं रह सकता और जिनमें प्रेम नहीं यानि अहिंसा नहीं, जो जीवमात्र को अपने कुटुम्बी नहीं मान सकते, वे जीने का मंत्र कभी नहीं साध सकते।

कई भाईयों को यह कहते सुना है कि पूर्वजन्म में जिसमें जैसा किया वैसा ही फल भोग रहा है, यह अहंकार है। जब हमारे माता–पिता, स्त्री–बच्चे कष्ट में होते हैं तो क्या यह कहकर हम उसकी उपेक्षा करते हैं। हम उनकी सेवा करते हैं तो फिर दूसरों के प्रति यह उपेक्षा क्यों? दूसरों को कष्ट में देखकर उनकी उपेक्षा करना और यह कहना कि तुमने पूर्वजन्म में जो किया है, भोगो; ईश्वर को जिसे हम दया का सागर कहते है, राक्षस बना देना है।

मनुष्य अपने सच्चे स्वाभाव का साक्षात्कार तो तभी कर पाएगा जब वह भली–भाँति समझ लेगा कि मनुष्य बनने के लिए पशुता या दानवता का त्याग करना आवश्यक है।

वैज्ञानिको का कहना है कि हम बंदरों की संतान है। भले ही उनकी बात सच हो लेकिन मनुष्य का भवितव्य पशु बनकर जीना और पशु की तरह मर जाना नहीं है। जिस अनुपात में वह अहिंसा

को अपने आचरण में उतारता है और स्वेच्छा से अनुशासन के अधीन होता है, उसी अनुपात में वह पशुवृति से दूर हटता चला जाता है और अपने भवितव्य की ओर बढ़ता जाता है। अहिंसा हमपर जो कर्त्तव्य आरोपित करती है उनमें से एक यह भी है कि हम निर्बल से निर्बल आदमी के अधिकारों के सम्मान की रक्षा करें।

हिटलर तो दुनिया में आते और जाते रहेंगे। जो लोग सोचते हैं कि हिटलर के मर जाने अथवा पराजित हो जाने पर हिटलरी भावना भी मर जाएगी, वे बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। विचारणीय प्रश्न तो यह है कि हम उस भावना का मुकाबला कैसे करते हैं—हिंसा या अहिंसा से। अगर हम उसका मुकाबला हिंसा से करते हैं तो हम उस दुर्भावना को प्रोत्साहन देते हैं, अगर हम उसका अहिंसा से करते है ंतो हम उसे निर्बीज कर देते हैं।

तुम्हें मानवता पर अपना विश्वास नहीं खोना चाहिए। मानवता तो महागसागर है। कुछ बूँदों के गन्दा होने से कोई महासागर गन्दा नहीं हो जाता है।

पुष्प को अपनी सुंगध फैलाने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता है, उसका स्वाभाव ही सुगंध फैलाना है। तू भी ऐसा बन। हर मनुष्य को ऐसा बनना चाहिए। लेकिन ऐसा है नहीं। क्योंकि हमारी आकृति ही केवल मुनष्य की है। स्वाभाव तो पशुओं जैसी है। हमें पशु स्वाभाव से उबरने के लिए अथक परिश्रम करने पड़ते हैं।

हर समय और प्रत्येक मनुष्य के प्रति परोपकारी दृष्टि रखने से नतीजा अच्छा ही निकलता है। दयालुता तो दयालुता के खातिर ही दिखाई जानी चाहिए, बदला अपने आप बिना मांगे ही मिल जाता है। कहा जाता है कि अपने को पाने के लिए अपने को मिटाना चाहिए और अपने को रखने से आप जाता है।

कर्त्तव्य

अपनी सेवाओं के लिए पुरस्कार का ख्याल कभी नहीं करें। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यदि हम उसके लिए व्याकुल नहीं होते तो भी वह आता ही है। भले ही वैसे नहीं आए जैसे हम सोचते हैं। किन्तु इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। सच कहें तो हम जिसे अपना कर्त्तव्य समझते है, उसे भरसक पूरा कर रहे हैं, इसकी चेतना ही सबसे बड़ा पुरस्कार है।

आपत्ति मनुष्य को शोध कर खरा बनाती है। हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते हैं उसे बराबर करते रहें और परिणाम भगवान पर छोड़ दें, जिसकी अनुमति या जानकारी के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकेगा।

हमसे जितनी बन पड़े उतनी ईमानदारी पूर्वक कोशिश करें। यह हमारा कर्त्तव्य है। फल ईश्वर के हाथ में है।

जो मुनष्य स्वयं शुद्ध है, द्वेषरहित है, किसी से गलत लाभ नहीं उठाता, हमेशा पवित्र मन से व्यवहार करता है, वही मनुष्य धार्मिक है, वही सुखी है और वही धनवान है। ऐसे लोग ही मानव जाति की सेवा कर सकते हैं। दिया सलाई में यदि अग्नि न हो तो वह दूसरी लकड़ियों को कैसे सुलगा सकेगी ? जो मनुष्य स्वयं ही नीति का पालन नहीं करता, वह दूसरो को क्या सिखाएगा।

मैं जिम्मेदार हूँ, यह मेरा फर्ज है—यह विचार मनुष्य को दोलायमान कर देता है और एक विचित्रता का अनुभव कराता है। हमारे कानों में सदा एक रहस्यमय आवाज की प्रतिध्वनि पड़ा करती है। हे मानव ! यह काम तेरा है। हार या जीत तुझे स्वयं ही प्राप्त करनी है। तेरे जैसा दुनिया में तू ही है। क्योंकि प्रकृति ने दो समान वस्तुएँ कहीं

नहीं बनाई है। जो कर्त्तव्य तुझै सौंपा गया उसे यदि तू नहीं निभाता तो जगत के लेखा–जोखा–पत्रक में उतना नुकसान आता ही रहेगा।

जो मनुष्य विषयों से दूर रहकर अपने शरीर, मन बुद्धि और जीवन की रक्षा नहीं करता वह वाह्य–जीवन में सफल नहीं हो सकता।

सबके प्रति प्रेमभाव रखो। दूसरो के दोष देखने के बजाय गुण देखो और अपने दोष देखो। बेकार की बातचीत में समय न गँवा कर विचार करते रहो। एक क्षण भी व्यर्थ गँवाना अपने जीवन का उतना अंश खोने और ईश्वर से उसकी चोरी करने के बराबर है। इसे समझकर अपने हर एक क्षण का सदुपयोग करना ।

सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह का पालन प्रत्येक मुमुक्षुओं को करना चाहिए। व्यापारी हो, तो न असत्य बोले और न आचरण करे। गृहस्थ हो तो भी ब्रह्मचर्य का पालन करे। अहिंसा का पालन और अस्तेय का पालन किया जा सकता है। किन्तु अपरिग्रह लोक–व्यवहार में कठिन है। फिर भी आदर्श को ध्यान में रखकर एक सीमा बनानी चाहिए और जब वैराग्य उत्पन्न हो तो महात्याग भी किया जा सकता है।

समानता के लिए प्रयत्न करना मनुष्य का कर्त्तव्य है और अधिकार है क्योंकि प्रेम और मैत्री समानो में हो सकती है।

मेरे विचार में जिस तरह मर्यादा पालन पुत्रों का धर्म है, उसी तरह पिता के लिए भी यह आवश्यक है कि वह अपने ईश्वर होने की वृति (प्रभुता) को अंकुश में रखे। अगर पुत्र विनय बरतता है, सेवा के अवसर पर सेवा करता है, अपंग होने पर माता–पिता का भरण–पोषण करता है तो पिता को इतने से ही संतोष मानना चाहिए। मुझे तो पता नहीं है कि प्राचीन काल के संस्कारी माता–पिता इससे अधिक कोई अपेक्षा रखते थे।

यदि मुझमें अहंकार है, तो मुझे दिखाई दे और साधक होऊँ, तो मैं उसे दूर करने का प्रयत्न तो करूँगा।

अच्छी खबर हो या बुरी–उसे अपने ऊपर से यों गुजर जाने दो जैसे वत्तख की पीठ पर से पानी फिसल जाता है। जब हम कोई खबर सुनें तो हमारा कर्त्तव्य मात्र इतना पता चलाना है कि क्या कुछ करने की जरूरत है? और यदि हो तो हम अपने आपको प्रकृति के हाथ का एक साधन मानकर उसे कर दें।

प्रकृति का अतिक्रमण कौन कर सकता है ? प्रकृति जहाँ तक जाने दे वहाँ तक जाने का प्रयत्न करना हमारा धर्म है। शेष तो ईश्वर के हाथ में है।

जिस अंग में–व्यक्ति, समाज अथवा संस्था में–हमें अपूर्णता दिखाई दे वहाँ पूर्णता लाने का प्रयत्न करना हमारा कर्त्तव्य है। यदि गुण की अपेक्षा दोष बढ़ते जायें तो उसका त्याग–असहयोग करना धर्म है।

अशांति दूर करने का तरीका है–संतोष और उदारता। स्वर्ग जाने का जितना अधिकार वेदों के ज्ञाता को है, उतना ही अधिकार भंगी का काम करने वाले को है। किन्तु यदि वेदों का ज्ञाता कोरा पंडित या पाखंडी हो तो वह चाहे कितना बड़ा विद्वान क्यों न हो, फिर भी नरक में पड़ेगा और भंगी ब्रह्म शब्द न जानते हुए भी यदि ईश्वरार्पण बुद्धि तथा सेवा–भाव से रोज पाखाना साफ करें तो अवश्य ऊँचा उठेगा। तन–मन से करने पर जितना काम हो सके, उतने से संतोष करना और जितना आगे बढ़ा जा सके, उतना आगे बढ़ते जाना चाहिए, यह है संतोष। उदारता–हम जितना चाहें या करें उतना दूसरे न करे तो भी मन को बुरा नहीं लगना चाहिए। ऐसा करने पर ही आस–पास रहने के बावजूद हम समाज में शांति बनाए रख सकेंगे।

तुम्हें अच्छा बनने का दृढ़ संकल्प करना चाहिए। सदा ईश्वर से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें अच्छा बनाए और तुम अच्छे बन जाओगे।

'बीमार' तीन नियम याद रखें–एक हिम्मत हारना ही नहीं, दूसरा जिसके हाथ में नब्ज दे दी, वह जैसा कहे वैसा ही करना और तीसरा कैसा भी दुख हो तो राम–नाम रटना और प्रफुल्लित रहना।

अपनी कमजोरियों को हम जानने लगे हैं, यह शुभ चिन्ह है। हमें लोग मूर्ख माने अथवा अव्यहारिक पशु, पर हम असत्य न बोले और असत्याचरण न करें। ऐसे प्रंसगों पर सत्य का पालन कठिन होता है पर जिसका कठिनाईयों में भी पालन किया जाए वहीं धर्म होता है। जब सागर शांत हो, उस समय जो पतवार सँभाले रहता है, वह कुशल माँझी नहीं होता। कुशल माँझी तो वह होता है, जो तूफ़ानी सागर में नाव को डूबने से बचाए।

सबसे उत्तम मार्ग क्या है? इसको लेकर मनुष्य अक्सर धर्म संकट में पड़ जाता है यह तो एक अनवरत आध्यात्मिक संघर्ष है और जो व्यक्ति धर्मभीरू है, उसके संबंध में, सत्य, असत्य पर विजय प्राप्त करता है।

यह संसार दुख का सागर है। यदि इसी तरह का विचार करते रहें तो इसमें डूब जाएँगें। इस जगत का सिरजनहार और नियंता ईश्वर है तथा वह न्यायी है। अतः हमारा माना हुआ दुख, दुख नहीं है बल्कि कुल मिलाकर सुख ही है, अर्थात सत्य की ही जय होती है। ऐसा मानकर मन को हल्का रखना चाहिए। ऐसा करें तो दूसरों के दुख दूर करने में भी सहायता मिलती है। किन्तु इसके विपरीत यदि दुख का आँकड़ा बढ़ाकर रखें तो मोह उत्पन्न होता है और हम दुख दूर करने में सहायता देने लायक भी नहीं रह जाते।

माता–पिता के दोष जानते हुए भी उनके प्रति आदर का भाव रखना, इसी को माता पिता की भक्ति कहते हैं।

पढ़ने–लिखने की पूरी कीमत मेरी समझ में कल ही आई। पहले तो मैं उनके बारे में अक्सर उदासीनता ही प्रगट करता रहा हूँ। लेकिन कल मुझे यह भान हुआ कि पढ़ने लिखने का एक अनुपम स्थान और मूल्य है और अनपढ़ जातियों की सेवा करने में उन्हें इनका ज्ञान कराना हमारे कर्त्तव्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। उनका ज्ञान कराते समय हमें यह काम इस तरह करने की कोशिश करनी चाहिए कि उस आदमी की ज्ञान पिपासा तीव्र हो जाए।

जो मनुष्य सबको खुश करना चाहता है, वह किसी को खुश नहीं करेगा। खुश करना हो तो खुदा को, खुशामद करनी हो तो भी उन्हीं की, तो क्या हम सब चिंता और झंझट से छूट जाते हैं? खुदा को खुश कैसे करें? खुदा की सृष्टि इंसान की खिदमत करके ।

मैं गंदे कपड़े, गंदे मकानों और गंदे परिवेश और गंदे शौचालयों को बर्दास्त नहीं कर सकता तो कोई कारण नहीं कि गरीबों को गंदगी में रहना पड़े।

किसी भी ईमानदार व्यवसायी को—वह कितना ही योग्य क्यों न हो अपने आलसी रिश्तेदारों को घर बिठाकर नहीं खिलाना चाहिए। ईमानदार आदमी को बेईमान रिश्तेदार का निर्वाह नहीं करना चाहिए।

जिन लोगों ने पड़ोंसियों के साथ अपने व्यवहार में गंभीर भूलें की है, उन्हें पश्चाताप करना चाहिए और ईश्वर से क्षमा माँगनी चाहिए। अगर ईश्वर उन्हें क्षमा कर देता है, लेकिन दुनिया नहीं करती, तब भी उस आदमी को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता जिसने ईश्वर पर निर्भर रहना सीख लिया है।

हम किसी ऐसे व्यक्ति की इच्छाओं का आदर नहीं कर सकते जो अर्द्धनिद्रा में बकता हो और न ही हम उस व्यक्ति की माँग को स्वीकार कर सकते है, जो मदिरा तथा भाँग के नशे में हो। उसकी इच्छा का अनादर करने में उसकी सेवा है। इसी प्रकार हम उस व्यक्ति की भी माँग स्वीकार नहीं कर सकते, जो मोहग्रस्त हो।

मनुष्य को याद रखना चाहिए कि पूर्व कर्मो के अनुसार ही मुनष्य सुख–दुख भोगता है। लेकिन यह नियम मनुष्य को निर्मम बनाने के लिए नहीं हैं। जैसे मनुष्य को पूर्व कर्मों का फल भुगतना पड़ता है, वैसे ही वर्त्तमान कर्मो का भी फल उसे मिलता रहता है। अर्थात जमा, घटा, गुणा और भाग का सिलसिला निरंतर चलता रहता है और जैसे व्यक्ति को अपने कर्मो का असर पड़ता है। यह आत्मा का अलौकिक गुण है और उसमें से ही अद्वैत साधा जा सकता है।

केवल एक बात की जरूरत है—अपने कर्त्तव्य का मान होने के बाद हमें उसका पालन निरंतर मृत्युपर्यन्त करना चाहिए; दृढ़ रहना चाहिए। यदि यह बात ठीक है तो हमें ईश्वर की मदद के अलावा और किसी की मदद की जरूरत नहीं है।

बच्चे कोई पूर्वाग्रह लेकर नहीं जन्मते। वे अपने अस्तित्व के पिछले पूर्वाग्रहों को भी भूल जाते हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से वे संतों की तरह होते हैं, जो हर प्रकार की सांसारिक इच्छाओं से रहित होते हैं। बड़े लोग प्रयत्न करने पर संन्यासी बनते हैं। इसके साथ ही बच्चे और संन्यासी मानसिक तौर पर एक जैसे होते है। मैं यह नहीं कहता कि माँ—बाप को अपने बच्चे का त्याग कर देना चाहिए। लेकिन उन्हें अपने बच्चों के प्रति अपनी अत्यधिक ममत्व की भावना का कोई अस्तित्व ही नहीं है, इसके बारे में विचार नहीं करना चाहिए। उन्हें बच्चों को इतना लाड़ प्यार नहीं देना चाहिए कि उसकी उन्हें आदत हो जाए और माँ—बाप की अनुपस्थित में वे मुरझा जाएँ। न ही माँ—बाप को यह सोचना चाहिए कि उनसे अलग होने पर बच्चों पर दुखों का पहाड़ सा टूटेगा। लेकिन बच्चे हमारे पाप के परिणाम होते हैं और हम पर निर्भर होते है इसलिए हमें उनके प्रति स्नेह तथा ममता होनी ही चाहिए। जब बच्चों की देखभाल के लिए और लोग हो तथा किसी कर्त्तव्य पालन के लिए अकेला छोड़ना पड़े तो हमें उसके लिए अंधे प्यार या दुख की भावना के सामने आत्मसमर्पण नहीं कर देना चाहिए कि हम उनके बिना नहीं रह सकते।

सेवा

जिन्होंने सेवा करने का निश्चय और संकल्प लिया है, उचित रूप में शोक मनाने का एक ही मार्ग है और वह यह है कि वे और भी अधिक सेवा परायण बनें।

ईश्वर की सेवा किस प्रकार की जाए, उसका भजन कैसे किया जाए? ईश्वर की सेवा एक ही प्रकार से हो सकती है। गरीबों की सेवा ही ईश्वर का सेवा है। ईश्वर का नाम जपना, पूजा—पाठ करना आवश्यक है क्योंकि उससे आत्मा की शुद्धि होती है और जिस मनुष्य की आत्मा शुद्ध है वह अपना मार्ग स्पष्ट रूप से देख सकता है लेकिन पूजापाठ ही ईश्वर की सेवा नहीं है। यह सेवा का साधन है।

जीवन में कुछ तो निश्चित धारणाएँ होनी ही चाहिए। जीवन का लक्ष्य शोधकर यदि हम उस ओर प्रवृत न रहेंगे तो बिना पतवार की नाव के समान बीच समुद्र में गोते खाएँगें। सबसे श्रेष्ठ लक्ष्य है—मनुष्य मात्र की सेवा करना और उसकी स्थिति सुधारने में हाथ बँटाना। इसमें ईश्वर की सच्ची प्रार्थना, सच्ची पूजा का समावेश हो जाता है। जो मनुष्य खुदा का काम करता है, वह खुदाई पुरूष है।

जब तक मनुष्य स्वार्थी है, अर्थात् दूसरों के सुख की परवाह नहीं करता, तब तक वह जानवर जैसा ही है या उससे भी बदतर है। मनुष्य जानवर से श्रेष्ठ है, यह हमें तभी मालूम होता है जब हम उसे अपने कुटुम्ब की रक्षा करते हुए देखते हैं। इससे भी ज्यादा वह मनुष्य जाति में तब आता है जब वह अपने देश या समाज को अपना कुटुम्ब मानने लगता है। जब मानव मात्र को अपना कुटुम्ब मानता है तब तो वह इससे भी ऊँची सीढ़ी पर चढ़ जाता है। इसका मतलब

यह हुआ कि मनुष्य जितना मानव–समाज की सेवा करने में पीछे रहता है उतना ही वह हैवान है अथवा अपूर्ण है।

कौम की सेवा करनी हो और साथ ही नित्य सच्चाई बरतनी हो तो मार भी खानी पड़ेगी। इसमें यदि दुख न माने तो आत्मा को अधिक सुख और शांति प्राप्त होता है।

राजा कहने पर–मैं समाज का सेवक हूँ राजा नहीं हूँ। खुदा और ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सदा सेवा करने की शक्ति और बुद्धि दें। मेरी मुराद तभी पूरी होगी जब समाज की सेवा करते–करते मेरी मृत्यु हो।

समाज सेवा के लिए रूपया नहीं मनुष्य चाहिए। जिसमें भावनाएँ हो, अटूट प्रेम एवं कार्य में विश्वास हो।

हिन्दुस्तान की सेवा का अर्थ है–गरीबों की सेवा। ईश्वर अदृश्य है, इसलिए यदि हम दृश्य की सेवा करें तो पर्याप्त है। दृश्य ईश्वर की सेवा का अर्थ है गरीबों की सेवा और यही हमारे सार्वजनिक जीवन का अर्थ है।

अध्ययन आदि साध्य नहीं वरन साधन हैं। सेवा तो लगभग साध्य वस्तु है। अध्ययन द्वारा कोई भी मनुष्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर सका है। सेवा करके अनेक भव–सागर तर गए है और तर रहे हैं।

स्मरण रखें कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है और उसका उद्देश्य समस्त प्राणियों की सेवा करना है और इस प्रकार ईश्वर की महत्ता और उसके प्रेम को व्यक्त करना है। आप सेवा में ही सुख का अनुभव करें और तब आपको जीवन में किसी दूसरे सुख की आवश्यकता नहीं रहेगी।

काम करने में हमें अपने उस 'गीता–दृष्टि' का विकास करना है जो हमारा लक्ष्य है। गीता–दृष्टि यह है सब काम सेवा–भाव से करें। सेवा–भाव से करें यानि ईश्वरार्पण करके करें, और जो ईश्वरार्पण करके करता है, उसमें यह भाव नहीं होता है 'मैं करता हूँ'। उसमें द्वेष–भाव नहीं होता। उसमें दूसरों के प्रति उदारता होती है।

साकार मनुष्य परमात्मा को कैसे और कहाँ भजे। भगवान तो सभी जगह है। इसलिए उन्हें भजने का अच्छे से अच्छे और समझ में आने लायक स्थान तो प्राणी है। प्राणिमात्र में जो दुखी हैं, अपंग है, असहाय है उनकी सेवा भगवद–भक्ति है। रामनाम का उच्चारण भी वही सीखने के लिए है। रामनाम अगर इस सेवा के रूप में न बदले तो वह निरर्थक है।

शूश्रुषा के मेरे इस शौक ने आगे चलकर विशाल रूप धारण कर लिया। वह भी इस हद तक कि उसे करते हुए मैं अपना धंधा छोड़ देता था। अपनी धर्मपत्नी और सारे परिवार को भी उसमें लगा देता था। इस वृति को मैंने शौक कहा है। क्योंकि मैंने देखा है कि जब ये गुण आनन्ददायक हो जाते है तभी निभ सकते हैं। खींच तानकर अथवा दिखावा के लिए या लोकलाज के कारण की जाने वाली सेवा आदमी को कुचल देती है और ऐसी सेवा करते हुए आदमी मुरझा जाता है। जिस सेवा में आनन्द नहीं मिलता, वह न सेवक को फलती है, न सेव्य को रूचिकर लगती है। जिस सेवा में आनंद मिलता है उस सेवा के सम्मुख ऐश आराम या धनोपार्जन इत्यादि कार्य तुच्छ प्रतीत होते हैं।

प्रेम को कभी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें धैर्य और कष्ट सहन की क्षमता होती है और प्रेम का अर्थ है सेवा। इसलिए जो प्रेम करता है, वह सदा सेवा में ही सुख मानता है।

मेरा जो ज्ञान है वह मुझे सभी धर्मग्रंथ के अध्ययन से प्राप्त हुआ है। आत्मत्याग और सेवा में पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति से बड़ा मोक्ष और क्या है जिसको मनुष्य की आवश्यकता है?

अपने भीतर इस पूर्ण विश्वास को रखते हुए मेरी निरंतर यही इच्छा होनी चाहिए कि ईश्वर की इच्छा पर यह शरीर भी समर्पित किया जा सकता है और जब तक यह मेरे पास है इसका उपयोग, दुराचार, भोगविलास या आनन्द के लिए नहीं बल्कि केवल सेवा के लिए होना चाहिए और जाग्रत अवस्था में इसे सब समय सेवा ही करनी चाहिए।

जीवन का रहस्य निष्काम सेवा है, सबसे ऊँचा आदर्श है कि हम वीतरागी बने।

संसार में हम कर्ज लेने के लिए जन्म नहीं लेते उसे उतारने आते है। जिसे कर्ज उतारने की जरूरत नहीं, उसे शरीर रूपी जंजाल सिर पर लेने की क्या जरूरत है। वह मुक्तप्राणी है और कर्जदार सोलह आने भरपाई कर दे तो इसमें गर्व करने योग्य कोई बात नहीं। अतः सेवा करके फूल नहीं उठना चाहिए। इतना कर वह विश्राम के योग्य हुआ।

विद्याध्ययन सेवा के लिए होता है। सेवा में अपूर्व आनन्द है। अतः कह सकते हैं कि विद्याध्ययन आनन्द के लिए ही है। आजतक किसी व्यक्ति को सेवा किए बिना केवल साहित्य–विलास से अखंड आनन्द की अनुभूति होने की बात मैं नहीं जानता।

तू यह क्यों सोचता है कि हम केवल शरीर से ही सेवा कर सकते हैं? मन सेवा का उससे कहीं अधिक शक्तिशाली साधन है। जो हृदय से पूरी तरह पवित्र हैं वे सबसे अच्छी सेवा कर सकते हैं। वस्तुतः हम पूरी तरह पवित्र होने के लिए ही सेवा करते हैं। हृदय से पवित्र व्यक्ति के विचार वह काम कर सकते हैं जो अपवित्र हृदयवालों के शरीर कदापि नहीं कर सकते है।

बीमार आदमी भी सेवा कर सकता है–आराम के समय अपने समय को वह ईश्वर के ध्यान में लगा सकता है और अपने अधैर्य और क्रोध पर काबू पाकर अपनी परिचर्या करने वाले को अपने प्रेम से सराबोर कर सकता है।

मीरा ने गाया है–"आजनो लावो लीजिए रे, काल कोणे दीदी तो" (आज का लाभ ले लो कल किसने देखा है) हमें तो एक पल की भी खबर नहीं जम्हाई लेते–लेते चल पड़ेंगे तो फिर वह स्वर्णिम पंथ कौन सा है जिसपर चलने से सभी उद्देश्य सिद्ध हो जाएँ। ऐसा मार्ग केवल परोपकार का है अर्थात अपने पड़ोसियों की सेवा। इसी का दूसरा नाम परमार्थ है। परमात्मा का तात्पर्य है उत्तम अर्थ। इसी का

तीसरा नाम हरिभक्ति है। नरसी मेहता गाते है कि हरिभक्ति माला फेरने, तिलक करने या गंगा स्नान करने से नहीं होती। भक्त हमें बताते है कि यह तो सिर का सौदा है। अतः हम प्रतिदिन खाते–पीते, उठते–बैठते, जेल में और जेल के बाहर अखिल विश्व के कल्याण की कामना करें, उसके लिए जो सेवा हमारे भाग में आवे सो करे।

यदि आप पीड़ितों और दलित लोगों के प्रति मैत्री तथा भ्रातृत्व की भावना रखते हैं और दरिद्रनारायण की सेवा करते हैं तो मैं बिना संकोच कहूँगा कि आप दिनों–दिन ईश्वर के समीप पहुँच रहे हैं, शर्त्त इतनी ही है कि आप जो कुछ करें वह दिखावे या आत्मप्रकाशन के लिए न हो, बस सेवा–भाव और इन्सानियत के नाते किया गया हो।

जो ईमानदारी से धन्धा करते हैं वे भी देश की सेवा करते है। सेवा का दावा करने वाले लोग भार स्वरूप हो सकते हैं और धंधा करके कमाने वाले लोग शुद्ध सेवक हो सकते है।

ईश्वर को हम भले ही न जाने पर उसकी रची हुई सृष्टि को तो हम जानते हैं और सृष्टि की सेवा उस सिरजनहार की ही सेवा है।

सच्चा जीवन जीने की सुनहरी कुंजी एक ही है। जो सेवा कार्य सहज रूप से सामने आए उसमें कूद पड़ना और ध्यानावस्थित हो जाना। फिर मन में भी विचार केवल कार्य को पूर्ण करने का ही रहे न कि काम उचित है अथवा अनुचित इस बात का।

वृद्धावस्था की शुरूआत तो हो गई। लेकिन अब भी काफी जीवन शेष है–जीने के लिए नहीं, सेवा करने के लिए। जो जीने के लिए जीता है, वह वास्तव में जीता ही नहीं है। जो सेवा की खातिर जीता है वही जीता है और जो सेवा करते–करते मर जाता है, वह भी जीता है। इसलिए सारी चिन्ता छोड़कर शरीर और मन जो सेवा स्वीकार करे वह करो।

आप जिंदगी का मकसद समझ लें। वह मकसद तो यही है कि जिस ताकत ने हमको बनाया और जिसकी कृपा पर या कहें कि

जिसकी दया पर हमारी साँस का आना–जाना मुनहसिर है उसकी मखलूक या उसकी सेवा करें।

मैं अपने को किसी का शत्रु नहीं मानता और प्राणिमात्र की सेवा करने में मैं जुटा हुआ हूँ। उसे ही मैं परमात्मा का अंश मानता हूँ। इसलिए मुझे लगता है कि मानवमात्र की सेवा करना प्रभु की सेवा करने के समान है। यह आश्वासन मुझे अबोध शक्ति प्रदान करती है।

अस्पृश्यता

यदि आप कहें कि मैं स्पर्श व्रत में शामिल इससे नहीं होना चाहता कि मैं इस पाप का भागी नहीं बनना चाहता कि इससे मेरे माता–पिता देह छोड़ देंगे तो मेरा कहना है कि प्रहलाद ने कभी यह नहीं सोचा कि अगर विष्णु का नाम लूँगा तो मेरे पिता क्या करेंगे। मेरे ख्याल से इस कारण से वे प्राण छोड़ दें तो कोई विपत्ति की बात नहीं है।

शायद ऐसा भी हो कि किसी दिन मैं पागल हो जाऊँ और कहने लगूँ कि मैंने अस्पृश्यता संबंधी विचारों में भूल की। अस्पृश्यता को हिन्दूधर्म का पाप कहकर मैंने पाप किया है तो आप मानना कि मैं डर गया हूँ, सामना नहीं कर पाया और हार कर अपना विचार बदल रहा हूँ। उस दशा में मानना कि मैं बेहोशी में बक रहा हूँ।

यदि अस्पृश्यता संबंधी मेरे विचार कालांतर में बदले ऐसे समय आने के पहले ही मैं हिन्दूधर्म ही नहीं संसार के धर्ममात्र का त्याग कर सकूँगा। किन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हिन्दू धर्म का पूर्वोक्त कलंक से मुक्त करने में यदि शरीर भी देना पड़े तो यह कोई बड़ी बात नहीं। जिस धर्म में नरसी मेहता जैसे समदर्शी भगवद्भक्त हो उसमें अस्पृश्यता की भावना का रह सकना कदापि संभव नहीं है।

हिन्दू अन्त्यजों की सेवा करते हैं तो इसमें वे उनपर कोई उपकार नहीं करते बल्कि अपने उपर ही उपकार करते हैं। अपने अन्त्यज कहे जाने वाले भाईयों को अन्त्यज बनाने के लिए हिन्दू ही उत्तरदायी हैं। ऐसा करके उन्होंने जो पाप किया है, उसका मार्जन और प्रायश्चित वे जितना करें, कम हैं।

मैं अन्त्यज भाईयों से यही कहूँगा कि हिन्दू–धर्म का यह कथन कि स्वयं मरे बिना कोई स्वर्ग नहीं पहुँच सकता, बिल्कुल सही है अपनी उन्नति तुम्हें स्वयं करनी है। तुम यह मानकर मत बैठ जाना कि तुम्हारे भले के लिए जो कुछ जरूरी है, सब हिन्दू समाज करेगा। वे तो तुम्हारी सेवा करके अपना ही भला कर रहे हैं। तुम्हें अपनी ताकत दिखानी है तो जागो और तुमपर जो दोष लगाकर त्याग किया है उसे दूर करो।

अस्पृश्यों की सेवा अथवा उनके साथ न्याय करने का क्या अर्थ है ? इसका केवल यही अर्थ है कि सदियो ंसे चढ़े ऋण से मुक्त हो जाना, तथा युगों से हम जिस पाप के भागी बने रहे हैं, उसका कुछ प्रायश्चित करना। अर्थात अपने ही भाई–बहनों का दमन तथा उनके अपमान करने के पाप का प्रायश्चित करना।

अस्पृश्यता के पाप को धोने के लिए कितनी भी भयंकर यातना सही जाए, वह ज्यादा नहीं कही जा सकती। अस्पृश्यों के प्रति अपने व्यवहार के लिए क्या हमें ईश्वर की ओर से भंयकर सजा नहीं मिलनी चाहिए।

हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता आज जिस रूप में प्रचलित है, वह मेरी राय में ईश्वर और मनुष्य के प्रति पाप है और इसलिए वह जहर की तरह धीरे–धीरे हिन्दू धर्म को ही खोखला किए जा रहा है।

यदि मुझे पता चले कि हिन्दुशास्त्र सचमुच अस्पृश्यता के वर्त्तमान रूप का समर्थन करते हैं तो तो मैं हिन्दू धर्म को छोड़ देता किन्तु मैंने पाया है ऐसा नहीं है।

इस बात का प्रचार किया जा रहा है कि अस्पृश्यता निर्मूल नहीं हो सकती। जिस प्रकार मनुष्य आँखों से देख सकता है, उसी प्रकार

मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि अस्पृश्यता नष्ट होने को है। कालचक्र की गति को कोई भी मनुष्य आजतक रोकने में समर्थ नहीं हुआ है, अगर हम अपनी इच्छा से उन्हें अपना लेंगे और जितने अधिकार हमारे हैं सब उन्हें दे देंगे तो ईश्वर के दरबार में, ईश्वर के खाते में हमारा यह पुण्य–कार्य माना जाएगा।

मैं सच कहता हूँ इस विषय पर मैं जितना अधिक सोचता हूँ, उतना ही अधिक मुझे यह प्रतीत होता जाता है कि कोई आदमी अपने को किसी से उच्चतर माने, इससे बड़ा पाप कुछ नहीं हो सकता। मुझे संसार के जितने भी नेक और ज्ञानी लोगों के बारे में जानकारी है–उन सबने यही कहा है कि मैं तो तुच्छातितुच्छ हूँ। किसी भी मनुष्य को अस्पृश्य मानना भयंकर पाप है। मनुष्य का अहंकार ही उससे ऐसा कहता है कि वह अन्य लोगों से श्रेष्ठ है।

अस्पृश्यता का अंत नहीं हुआ तो एक दिन हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का नाम भर शेष रह जाएगा। यह अधर्म, यह कलंक, यह जहर इतना जर्बदस्त है और इतने समय से चला आ रहा है कि हम इसका जहरीला असर देख भी नहीं पाते और वह हमें खाये जा रहा है।

अस्पृश्यता के मामले में जो कुछ हो रहा है, वह आखिर इतिहास की पुनरावृति है। कोई भी सुधार जिसे सुधार कहा जा सके अभी तक ऐसा नहीं हुआ है कि जिसमें सुधारक को अपने ध्येय के लिए प्राणों की बाजी न लगानी पड़ी। अस्पृश्यता का दानव यदि एक व्यक्ति की बलि लेता है तो यह समझना चाहिए कि वह आसानी से संतुष्ट हो गया। युगों से चली आती एक बुराई जिसे एक गुण कहकर रखा गया है, पर्याप्त बलिदान के बिना नहीं हटायी जा सकती। मेरा ईश्वर के सर्वशक्तिमान सत्ता में विश्वास है। जब तक इस ध्येय के लिए मुझे इस शरीर में रखना चाहता है तब तक सभी तरह की क्षति से मेरी रक्षा करेगा और जब उसके लिए उसका कोई उपयोग नहीं रहेगा तो पार्थिव शक्ति की कैसी भी सुरक्षा का कोई लाभ नहीं हो सकेगा।

अगर मुझे यह विश्वास न होता कि प्रभु की लीला को कोई नहीं जानता तो मुझ जैसा संवेदनशील आदमी अस्पृश्यता देखकर बिल्कुल पागल हो जाता।

अस्पृश्यता हिन्दू धर्म के उपवन में उग आए अवांछनीय घास–पात की तरह थी तो इस तरह फैलती जा रही थी कि उससे इस उपवन के सुन्दरतम पुष्पों के कुम्हला जाने का खतरा पैदा हो गया था।

अर्थनीति

संसार के सभी धर्मग्रंथों में इस आशय के आदेश मिलते हैं कि 'कल की चिन्ता मत करो' किसी भी सुव्यवस्थित समाज में रोटी कमाना सबसे सुगम बात होनी चाहिए और हुआ करती है। निस्सन्देह किसी देश की सुव्यवस्था की पहचान यह नहीं है कि इसमें कितने लखपति लोग रहते हैं। बल्कि यह है कि जनसाधारण का कोई भी व्यक्ति भूखों तो नहीं मर रहा है।

भौतिक उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचते ही रोमन लोगो का नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया। मिस्र देश में भी यही हुआ। परमात्म विभूतियों से विभूषित श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज के कुटुम्बियों का– यादवों का भी, जब वे खूब दौलत मंद होकर गुलछर्रे उड़ाने लगे तो पतन हो गया। मेरा ख्याल है कि अर्थशास्त्र संबंधी नियमों के बारे में अर्थशास्त्र के बदले हमारे धर्मग्रंथ हमारा अधिक उचित मार्ग–दर्शन करते हैं।

जिस हद तक हम आधुनिक भौतिकतावाद के पीछे दीवाने बने रहेंगे, उस हदतक हम उन्नति के मार्ग से दूर रहकर अवनति की दशा में अग्रसर होते जाएँगे।

मेरी धारणा है कि आर्थिक उन्नति उस अर्थ में, जिसे मैंने आपके समक्ष रखा है, वास्तविक उन्नति के विरूद्ध पड़ती है। यही कारण है

कि हमारा प्राचीन आदर्श धन–संपत्ति में वृद्धि करने वाली गतिविधियों पर नियंत्रण रखना रहा है। इससे भौतिक समृद्धि की आकांक्षा समाप्त हो जाती है, जो बात नहीं है। हमारे मध्य जैसा कि सदा से होता आया है कि अब भी ऐसे व्यक्ति पैदा होते रहेंगे जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य धन अर्जित करना बना रखा है। परन्तु हमारा सदा से ही यह विचार रहा है कि धनोपार्जन को लक्ष्य बना लेना आदर्श से गिर जाना है। हममें से सबसे अधिक धनवान व्यक्तियों ने प्रायः यह अनुभव किया है कि यदि हमने स्वेच्छा से निर्धनता अपनाई होती तो वह स्थिति हमारे लिए उच्चतर होती। परमेश्वर और माया दोनों को एक साथ नहीं साधा जा सकता। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक सत्य है।

काम करने के पीछे शुद्ध भावना है तो शुद्ध धन अपने आप आ जाता है।

फकीरों सा सादा जीवन व्यतीत करने का मतलब यह नहीं कि मनुष्य के पास एक कौड़ी भी न होनी चाहिए। लेकिन उनकी हैसियत के लोग जैसा जीवन व्यतीत करते हैं और जिस सुख और ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं, उन सबको त्याग देना ही सच्ची फकीरी है।

धन की प्राप्ति नहीं होती यह तो कोई दुख की बात नहीं। लेकिन यदि धर्म की रक्षा न होती तो यह अवश्य दुख की बात है। धर्म की रक्षा होती है या नहीं यह तो आप स्वयं ही जान सकते हैं।

स्वयं पैसे में कोई दोष नहीं है। परंतु उसके लोभ में दोष है। ठीक उसके विपरीत गुलामी लोभ की निशानी है।

गुलामी और पैसा सजातीय नहीं है। गुलामी मनुष्य की एक स्थिति है और हमेशा त्याज्य है। पैसा जगत के साथ अपना आर्थिक व्यवहार चलाने का एक साधन मात्र है।

यदि सब लोग अपनी पूरी कमाई राज्य को दे दें तो किसी को उद्यम करने की प्रेरणा नहीं मिलेगी और मुनष्य केवल जड़ यन्त्र बन जाएगा।

धनोपार्जन करो, लेकिन अपने लिए नहीं, गरीबों के लिए ही। लोग सामान्यतया अपने भोगों के बाद जो रह जाता है, उसमें से कुछ गरीबों के लिए रखते हैं। न्याय यह है कि हम पहले गरीबों के लिए चेष्टा करें और बाद में अपने लिए।

(अपने लड़कों से) याद रखो कि हमारे भाग्य में गरीबी बदी है। इसका जितना ख्याल करता हूँ, उतना ही अनुभव करता हूँ कि अमीर होने से गरीब होना ज्यादा बड़ी नियामत है। दौलत के फायदे से गरीबी के ज्यादे फायदे ज्यादे मीठे होते हैं। सत्य अहिंसा और ब्रह्मचर्य पर यदि आचरण करो और यदि वे तुम्हारे जीवन के अंग बन जाए तो समझो तुम्हारी शिक्षा और दीक्षा पूरी हुई। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि पुस्तकीय ज्ञान मत प्राप्त करो।

यदि कही परिवर्त्तन ठीक न जँचे तो भी हो जाने देना। आर्थिक लाभ और हानि के विचार से किसी बात पर आग्रह हरगिज न करना चाहिए। हम विश्वास मान लेते हैं कि हमें अपनी मेहनत से रोटी मिलती है। यह कहावत है कि जिसने दाँत दिए है, वह चबेना भी देगा ही, ठीक–ठाक समझ ली जाए तो अच्छा है।

जैसे ही धार्मिक स्थिरता सुनिश्चित होती है, आत्मिक दिवालियापन भी सुनिश्चित हो जाती है। सोना–चाँदी नहीं, केवल रोटी चाहिए। ईश्वर की इस व्यवस्था में कुत्ता तक भूखा नहीं रहता।

बहुत लोगों के पास अपार धन है। लेकिन यदि वे उसका सदुपयोग न करते हों तो उनके पास पैसा होना या न होना एक समान है।

दगा किसी का सगा नहीं होता। पैसे संग्रह करने का अर्थ है, दूसरों पर सत्ता प्राप्त करना। धनवान होने का अर्थ है, जहाँ तक बन सके उतने लोगों को अपने से अधिक तंगी में रखना। जिस प्रकार रक्त का जमाव एक स्थान पर हो जाने पर शरीर को हानि पहुँचती है, उसी प्रकार एक ही जगह धन का जमा हो जाना, जाति की हानि का कारण हो जाया करती है। नीति–अनीति का ख्याल किए बिना धन

एकत्रित करने के नियम गढ़ने की बात से मनुष्य का सिर्फ अहंकार प्रकट होता है।

मनुष्य जितना चतुर और नीतिवान होगा उतना ही उसके धन में वृद्धि होगी इस प्रकार विचार करने पर देखेंगे कि वास्तविक धन सोना–चाँदी नहीं बल्कि इंसान ही है।

हमारा सदा से यह विचार रहा है कि धनोपार्जन का ही लक्ष्य बना लेना आदर्श से गिर जाना है।

समभाव

मैंने भारतीयों के अलौकिक प्रेम का अनुभव किया है। फिर भी कुछ एक व्यक्तियों ने यह मान लिया–और दूसरों ने उनके इस विश्वास का उत्तेजन दिया है कि वे मेरे शत्रु है, लेकिन मैं उनको अपना शत्रु नहीं मानता। विरूद्ध बोलने वाले लोग अनेक बार सच्चे मित्र साबित होते हैं। यदि वे मेरे विरूद्ध बोलते हैं। इसमें मैं सर्वथा निर्दोष नहीं हूँ। मेरे मन में यदि उनके प्रति प्रेम–भाव हो तो वे मुझ पर कटाक्ष कर ही नहीं सकते। किन्तु ऐसा संपूर्ण प्रेम करने वाला भाग्यवान व्यक्ति विरला ही हो सकता है। जब तक ऐसा संपूर्ण प्रेम मुझे सधता तब तक मैं उसका विरोध सहन करूँगा, उनको मैं अपना शत्रु नहीं मानूँगा।

अहिंसा तो प्रेम है। वह मौन और करीब–करीब गुप्त रूप से अपना असर पैदा करती है। मित्रों और सगे संबंधियों के बीच प्रेम का कोई करिश्मा नहीं होता। वे एक दूसरे को स्वार्थवश प्यार करते हैं, प्रबुद्धता के आधार पर नहीं। वह तो तथाकथित विरोधियों के बीच ही अपना करश्मिा दिखाता है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि आदमी जितनी ही दयालुता और दानवीरता दिखा सकता

है, वह सारी की सारी अपने विरोधी या आततायी के प्रति दिखाई जाए।

जिन लोगों को हम निकटतम और अत्यन्त प्रिय समझते हैं, उनके विद्वेष, निन्दा, उपेक्षा और वहिष्कार के बीच रहने के लिए भी एक तरह के साहस की आवश्यकता होती है। हमें इस तरह के साहस का अपने भीतर विकास करना होगा।

यदि हम अपने दुश्मनों से प्रेम करने के लिए तैयार नहीं है तो हमारा भ्रातृत्व एक उपहास की वस्तु ही है।

यदि हम समदर्शी होना चाहते हैं तो हमें ऐसा उपाय करना चाहिए कि जो समस्त जगत को मिले वही हमें भी मिले। यदि समस्त जगत को दूध मिले तो हमें भी मिले। ईश्वर से हमारी यह प्रार्थना होनी चाहिए कि यदि तू मुझे दूध देना चाहता है तो सारे जगत को दूध दे। लेकिन ऐसी प्रार्थना कौन कर सकता है? वही जिसमें इतनी करूणा हो, जो दूसरों के लिए श्रम कर सकता हो। यदि हम इस नियम का पालन नहीं कर सकते तो हमें कम से कम इसे समझना तो अवश्य चाहिए कि हम इतने ज्यादा गिरे हुए हैं कि वह हमें निभा लें। हम भले ही आगे न बढ़ें, लेकिन वह हमें इतनी शक्ति दे कि हमारे पास जो परिग्रह है, उसे हम कम कर सकें। यदि हम अपने पापों का प्रायश्चित करें तो उनमें वृद्धि नहीं होगी। हमें कोई भी वस्तु अपनी समझकर नहीं रखनी चाहिए और यथाशक्ति परिग्रह का त्याग करने का प्रयत्न करना चाहिए।

जो कर्म विवेक और संकल्पपूर्वक किया जाता है और आत्मार्थ होता है, वही कर्म खरा अकर्म बन जाता है। कर्म के फल का त्याग करना अथार्त दूसरों के लिए कर्म करना हो तो हम उसमें घोड़ों की तरह जुट जाएँ और अगर अपने लिए करना हो तो निःस्पृह भाव से जड़ होकर उसे करें। यह एक हार्दिक स्थिति है, मन की भावना है।

हम अपूर्ण मनुष्य हैं और अपूर्ण अनुभव के बल पर अपूर्ण सिद्धांत निश्चित कर लेते है। यह सत्य है कि कर्म के मार्ग से हम ज्ञान तक पहुँच सकते हैं और यह अनवरत, अनासक्त कर्म और सच्चा आत्म निरीक्षण ही हमारे अहम का विनाश करा सकता है और हमें यह आनन्दमयी अनुभूति कराता है कि सारे जगत में ईश्वर ही ईश्वर है तथा हममें और दूसरे जीवों में कोई अंतर नहीं है।

भलाई के बदले भलाई करने में क्या बड़प्पन है, वैसा तो बहुतेरे करते हैं। बड़प्पन तो बुराई के बदले भलाई करने में है।

हम कहते हैं, यह ऊँच है, वह नीच। शास्त्र–वैज्ञानिक और आध्यात्मिक शास्त्र–कहते है कि जैसे शारीरिक दृष्टि से, वैसे ही आत्मिक दृष्टि से भी हम सब एक ही हैं। शरीर का पृथक्करण करके वैज्ञानिक कहते हैं, हम सब पंचमहाभूत के पुतले हैं। न योनि का भेद है, न जाति का और न लिंग का, चींटी, हाथी, ब्राह्मण–भंगी, स्त्री–पुरूष सबके शरीर मिट्टी आदि के बने हैं, उपनिषद हमें सिखाते हैं कि आत्मदृष्टि से देखा जाए तो पता चलेगा कि सबमें एक ही आत्मा व्याप्त है। इसलिए सूक्ष्मदर्शी आचार्य शंकर हमें बता गए हैं कि नाम रूपादि का जो भेद हमें दिखाई पड़ता है, वह सब माया ही माया है। फिर ऊँच–नीच, छूआछूत का झगड़ा क्यों ?

मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि मैं अपने विरोधियो के प्रति आदर व्यक्त करने का विशेष रूप से प्रयत्न करूँ और इस तरह उन्हें यह दिखा दूँ कि मेरे मन में उनके प्रति दुर्भावना हो ही नहीं सकती।

मनुष्य अपनी पीठ की भाँति ही अपने दोष भी स्वयं नहीं देख सकता। अतएव बुद्धिमानों ने यह सलाह दी है कि अन्य लोगों को हममें जो दोष दिखाई दे और वे हमारा ध्यान उनकी ओर आकर्षित कराएँ तो हम सदा उन्हें समझने के लिए तैयार रहें। अधीरतावश या गुस्से में आकर अपने बताने वाले का अनादर न करें ? मैं इस बात को जानता हूँ और इसी कारण अपने दोष बताने वालों का मैं सदा से स्वागत करता हूँ।

सब स्वजन हैं अथवा सब परिजन हैं। बच्चे बड़े होकर मित्र बन जाते हैं, मित्र को तो हम सलाह ही दे सकते हैं। फिर उन्हें जो ठीक लगे, वे करें। उसका दुख–सुख बिल्कुल न मानें और हमारे लिए तो सब एक से हैं, इसलिए किसका दुख और किसका सुख मानें।

इस जगत में कोई भी दोष–रहित नहीं है। आश्रम में हम सब इकट्ठे इसलिए नहीं हुए हैं कि हम दोष–रहित हैं बल्कि हम अपने दोष देखने के और दूर करने के लिए इकट्ठे हुए हैं।

विरोधी की निन्दा कभी की ही नहीं जा सकती। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उसके कार्यों का सच्चा वर्णन नहीं किया जा सकता। कोई विरोघ करने के कारण दुर्जन नहीं हो जाता। हम अपने लिए जितना भला होने का दावा करते हैं, वह भी उतना ही भला आदमी हो सकता है और फिर भी यह संभव है कि उसके और हमारे बीच महत्वपूर्ण भेद है।

प्रतिपक्षी को यदि हम झूठा मानते हैं तो उसके असत्य का सत्य से, अविवेक का विवेक से, उदण्डता का शांतिपूर्ण साहस से, हिंसा का सहनशीलता से, अहंकार का नम्रता से और बुराई का भलाई से सामना करें। मेरा अनुयायी निन्दा करने की नहीं बल्कि हृदय–परिवर्त्तन की पूरी कोशिश करेगा।

जिसका मन कभी रंक नहीं होता वह अरबपति से अधिक धनवान होता है। हमारा व्यवहार अत्यन्त शुद्ध रहे तो हम इस रंक स्थिति से उबर सकते है।

हमें अपने भाईयों की सेवा इसलिए करनी चाहिए कि हम उनके द्वारा ईश्वर की एक झलक देख सकें, क्योंकि उनमें भी वही आत्मा है, जो हममें है और जब तक हम यह समझते नहीं है, तब तक ईश्वर और हमारे बीच एक दीवार खड़ी रहती है। यदि हम उस दीवार को तोड़ना चाहते हैं तो उसका आरम्भ अपने भाईयों के साथ अपने को एकाकार करने से होगा।

मनुष्य अकारण द्वेष नहीं करता। इसलिए यदि कोई द्वेष का कारण उपस्थित करे तो भी द्वेष न करते हुए उससे प्रेम करना, उसपर दया करना उसकी सेवा करना ही अहिंसा है। प्रेमी के प्रति किए जाने वाले प्रेम में अहिंसा नहीं है, वह तो व्यवहार हे। प्रेम के बदले प्रेम करना, यह फर्ज अदा करने के बराबर है।

बिना झंझावत के निस्तरंगता और अशांति के बिना शांति प्राप्त नहीं होती। शांति में अशांति अन्तर्निहित है। अशांति न हो तो शांति क्या चीज है ? यह हम जान न सके। जीवन इस अशांति के विरूद्ध एक शाश्वत संघर्ष है चाहे वह अशांति भीतर की हो या बाहर की। अशांति के बीच शांति महसूस करने की जरूरत इसीलिए है।

ज्ञानपूर्वक दुख सहन करने से दुनिया में आजतक किसी का भी बुरा नहीं हुआ। दुख पड़े तो उसे सहन किया जाए, इसमें बुराई नहीं।

हमारे मन को रोग लग गया है। हम लगातार अपने ही बारे में क्यों सोचते रहते हैं और दूसरों लोगों द्वारा अपने प्रति किए गए अन्यायों के बारे में मन ही मन घुलते रहते हैं ? हम उन अन्यायों के बारे में क्यों नहीं सोच पाते जिनसे दूसरे लोग पीड़ित है ? हम अपने उपर होने वाले अन्यायों को लेकर मन ही मन घुलते रहने से असंतुलित हो जाते हैं। दूसरों पर होने वाले अन्यायों के साथ अपने आपको जोड़ने से हम सबल बनते जाते हैं।

ईश्वर की दृष्टि में पापी और साधु दोनों बराबर ही हैं। दोनों ही का समान न्याय होना है और ऊर्ध्वगमन या अधःपतन का समान अवसर दोनों को मिलता है। दोनों की ईश्वर के बेटे हैं, उसी की रचना हैं। जो साधु अपने आपको पापी से ऊँचा मानता है, वह साधुता गँवा देता है और पापी से भी तुच्छ हो जाता है। क्योंकि पापी को इस बात का ज्ञान ही नहीं होता कि वह क्या कर रहा है।

मैं मजदूरों का भला चाहता हूँ किन्तु मेरी मान्यता है कि पूँजीपतियों का अंत करके मजदूरों के हाथ कुछ नहीं लग सकता।

हमें किसी को पापी मानने का अधिकार नहीं है। क्योंकि हम सब दोष से भरे हुए हैं। जिसको हम अपने से भी ज्यादा पापी मानते हैं, वह सचमुच ऐसा है, ऐसा मानने का हमारे पास न कारण है न साधन।

धनिक लोगों के साथ मेरा संबंध रहने ही वाला है। उन्हें मैं दुष्ट नहीं मानता और गरीबों को फरिश्ते नहीं मानता। पूर्व और पश्चिम में ऐसे बहुत धनिक मौजूद हैं जो परोपकार के लिए कमाते हैं वे पूजा के योग्य हैं और मैं बहुत से गरीबों को जानता हूँ जिनका संग त्याज्य है।

रक्त संबंध की भी मर्यादा होती है। यह संबंध हमें अनीति की ओर प्रवृत करे, यह नहीं होने देना चाहिए। कोई पराया आदमी हरिलाल की स्थिति में पड़ जाए तो उसके प्रति जो धर्म होगा हरिलाल के प्रति भी उससे कुछ अधिक करने का धर्म नहीं हो सकता। बल्कि पराए के लिए कुछ अधिक उदारता दिखाई जा सकती है।

आदि से ही दीन–दुखियों के प्रति प्रचुर प्रेम मेरे जीवन का अभिन्न अंग रहा है। अपने अतीत काल के जीवन में से दृष्टांत देने बैठूँ तो मैं बतला सकता हूँ कि मेरा यह स्वाभाव एक जन्मजात वस्तु है। यह मैंने कभी नहीं माना कि मेरे और गरीबों के बीच में किसी तरह का कोई मेद है। उन्हें सदा अपना सगा संबंधी ही माना है।

हमें तो अपने हृदय में ऐसा वन उत्पन्न करना चाहिए जहाँ हम पेड़–पत्तों, पशु–पक्षियों से भिन्नता कर सकें, निर्भयता प्राप्त कर सकें और पड़ोसियों को मदद देने के लिए ज्ञान प्राप्त कर सकें।

प्रेम का बदला प्रेम से मिले, क्या तभी प्रेम करें ? अहिंसा, प्रतीक्षा और प्रेम की मात्रा को बड़ा कर सत्य को सिखाती है। प्रेम सौदे और शर्त्त की वस्तु नहीं है, जो अहिसंक के साथ अहिंसक रहता है, उसे अहिंसक कौन कहेगा ? अहिंसक आदमी का कोई दुश्मन नहीं होता। लेकिन अपने को जो दुश्मन कहता है, वह जब दुर्बल हो जाता है तो अहिंसक मनुष्य उसपर दया करता है। वह आपत्ति में उस पर सवारी नहीं करता।

मैं अपने ढेरों दोष रोज देखता हूँ, लेकिन अपने प्रति मेरी सहिष्णुता का कोई अंत ही नहीं है। इसी से मैनें दूसरों के दोष देखकर भी उनके प्रति सहिष्णु रहने की शिक्षा ली है।

जैसे हम चाहते हैं कि हमारे पड़ोसी हमसे प्रेम करें वैसे ही अगर हम भी उनसे प्रेम करना चाहते हैं तो हमें उनके व्यवहार की विचित्रताओं को सहन करना पड़ेगा। भला ऐसी कौन सी स्त्री या पुरूष है, जिसके व्यवहार में विचित्रता न हो? जो इनसे मुक्त हो वही दूसरों से कुछ कहे। क्या तुम हो या ऐसे किसी को जानते हो? मैं तो नहीं जानता और मैं छोटा या बड़ा जैसा भी हूँ अपने को उसका अपवाद नहीं मानता।

सच्चाई के साथ यह कह सकता हूँ कि मनुष्य के दोष देखने में मैं कभी जल्द बाजी नहीं करता। कारण मुझमें खुद ही बहुत से दोष हैं। इसलिए मैं स्वयं दूसरो से आशा करता हूँ कि वे मेरे दोष देखने में जरा सहानूभूति से काम लेंगे। मैंने सीखा है कि किसी के संबंध में सख्ती की जो बुराईयाँ मेरी नजर में आएँ उन्हें दरगुजर कर दूँ।

नैतिक उच्चता तो इसमें है कि विरोधी में ंजो कुछ भी श्रेष्ठ है उसे खोजो और उसे प्रभावित करो।

जब पुरूष निर्विकार हो जाता है तब वह स्त्रीरूप हो जाता है अर्थात वह स्त्री को अपने में समाहित कर लेता है और यही बात निर्विकार स्त्री के बारे में भी कही जा सकती है।

जहाँ तक पियक्कड़ों की बात है, उनके साथ रोगी की तरह बर्त्ताव किया जाना चाहिए, जो हमारी सहानुभूति और सेवा का पात्र है।

संस्था में न रहने के लायक कोई नहीं हो सकता। जगत ही तो संस्था है। जगत के बाहर कौन रह सकता है। कुटुंब भी संस्था है। कुटुंब और जगत के बीच में हमारे जैसी जितनी संस्थायें हैं, सब अपूर्ण है। जगत भी अपूर्ण—संपूर्ण संस्था जैसी वस्तु ही नहीं है क्योंकि संस्था अपूर्ण मानवों द्वारा बनी हुई है। संपूर्ण एक मात्र ईश्वर ही है। मनुष्य को तो उन्हीं अपूर्ण संस्थाओं में मिल जुलकर रहते हुए अपनी भूमिका निभाना और विकास करना है।

संस्था तोड़ने के प्रश्न पर—विकास अपने आप सहज रूप से हुआ है और विनाश या पुनर्निमाण भी उसी तरह होना होगा। मेरे अनेक घर बने और टूटे, सब यथा—समय हुआ, इसीलिए मैंने सबकुछ ईश्वर पर छोड़ दिया। भगवान ही जाने अब वह मुझे कहाँ पटकेगा। मेरी रक्षा इसी में है कि मैं प्रार्थना और प्रतीक्षा करूँ। प्रभु तू ही रास्ता बना। मनुष्य संसार को अपने से अलग नहीं कर सकता, इसीलिए मनुष्य को संसार के दोषों को सहन करते हुए अपना कर्त्तव्य करते जाना चाहिए।

अहिंसा कहती है तुम किसी को अपना बैरी न मानो, जो तुमको अपना बैरी मानता हो, उसे भी प्रेम करो। तब हम अंग्रेजों की मुसीबत से फायदा कैसे उठा सकते हैं?

तेरे रिश्तेदार हों तो भी उनके दोष छिपाने की कोशिश न कर।

बुराई का जबाब बुराई में देने से वह बुराई घटने के बजाय बढ़ती ही है। यह एक प्राकृतिक नियम है। हिंसा अधिक बड़ी हिंसा से शांत नहीं होती।

गीता में सच कहा है कि बिना ज्ञान के कर्म बिलकुल व्यर्थ होता है। मुझे स्वयं इस बात का अनेक बार अनुभव हुआ है और बहुतों को भी हुआ होगा। यदि कर्म ज्ञानमय हो जाए तो उसमें भक्ति तो अपने आप आ जाती है। और ऐसा करने के लिए आदमी को सत्य का सहारा लेना पड़ता है। यदि सत्य का ज्ञान हो जाए तो अन्य कोई प्रयत्न करने की जरूरत नहीं रहती। जिस प्रकार हमें अपना प्रतिबिम्ब दर्पण में देखने पर मुँह पर जरा सी भी दाग हो तो दिखाई दे जाता है, उसी प्रकार दूसरों की आलोचना करने से पहले हमें अपने हृदय का परीक्षण करना चाहिए। शायद ही कोई आदमी सर्वगुण संपन्न होने का दावा कर सकता है। इसीलिए मेरी विनम्र सलाह है कि दूसरे का दोष देखने के बजाय तुम स्वंय अपना दोष देखो।

विचारों में भी समानता की अपेक्षा रखना अनुचित है। आपसी सम्मान और सहिष्णुता ही एक ऐसी चीज है जिसकी कोई व्यक्ति उपेक्षा कर सकता है और इन गुणो को भी बढ़ावा देना चाहिए।

यह बात हमेशा याद रखो कि मनुष्य स्वेच्छा से दुष्ट नहीं होता बल्कि बेबस होते हैं, इसलिए वे तिरस्कार के नहीं, दया के पात्र हैं ईश्वर उसमें भी उसी तरह वास करता है जैसे अच्छे व्यक्तियों में। अच्छे व्यक्ति ईश्वर को जानते है लेकिन दुष्ट नहीं। इसलिए अच्छे व्यक्तियों को अपने आचरण को बारे में अधिक सावधान रहने की जरूरत है। आचरण सूर्य के तेज की भाँति एक जैसा होना चाहिए।

स्वाभिमान का पुजारी इस संसार में सभी के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करता है क्योंकि उसे अपने सम्मान के समान ही दूसरों का भी सम्मान लगता है।

तुमको इस बात की प्रसन्नता होगी कि तुम्हारा एक मित्र (गांधीजी स्वयं) ऐसा है जिसे ईश्वर ने उन लोगों को भी प्यार करने की शक्ति दी है, जो अपने को उसका शत्रु बतलाते है और जो कष्ट सहन में खुशी मनाता है।

यदि हम सबको ईश्वर ने बनाया है तो हमें एक दूसरे से क्यों डरना चाहिए या उन लोगों से घृणा क्यों करनी चाहिए जो हमारे जैसा विश्वास नहीं रखते ?

जब तक हम सभी प्राणियों के साथ जीवन्त समानता अनुभव नहीं करते तब तक हमारी प्रार्थनाएँ, उपवास और व्रतादि बिल्कुल व्यर्थ है।

सुख–दुख में, मानापमान में सम रहने का तात्पर्य यह है कि अपमान होने से खिन्न नहीं बनना, मान मिलने से फूल नहीं जाना। अपमान अथवा दुख का इलाज नहीं करना, ऐसा कभी नहीं है।

जो मैं करता हूँ वह छोटा दोष है और दूसरे करते हैं वह बड़ा दोष है ऐसा मानने वाला अज्ञान कूप में डूबा है।

नम्रता

नम्रता ईश्वर को भी प्यारी है और यही मार्ग अपने सच्चे संघर्ष में विजय पाने का भी है।

हर समय और प्रत्येक मनुष्य के प्रति परोपकारी दृष्टि रखने से नतीजा अच्छा ही निकलता है। दयालुता तो दयालुता के खातिर ही दिखाई जानी चाहिए और बदला अपने आप बिना माँगे ही मिल जाता है। कहा जाता है कि अपने को पाने के लिए अपने को मिटाना चाहिए और अपने को रखने से आप जाता है।

जब कभी मुझे सम्मान दिया जाता है, तभी मेरी आत्मा एक प्रकार का भय का अनुभव करती हुई जान पड़ती है और जब–जब मुझपर मार पड़ी है और मेरा अपमान हुआ है तब–तब मुझे अपने भूलों का ज्ञान हुआ है और ज्ञान मिला है और मैंने अपने में एक विशेष बल का अनुभव किया है। मैं आगे बढ़ सका हूँ और सुदृढ़ बना हूँ। अतः वे लोग जो आज मेरे विरूद्ध बात करते हैं, वे वास्तव में हितैषी हैं। पर अब तो मेरी मनःस्थति कुछ ऐसी हो गई है कि प्रशंसा से मुझे कोई विकार पैदा नहीं हो सकता।

आप सबलोगों ने जो मेरा सम्मान किया है, उसे स्वीकार करते हुए मुझे धर्मशास्त्र की आज्ञा याद आ रही है–रे मनुष्य जहाँ तेरी प्रंशसा हो रही है वहाँ से तू भाग जा और यदि न भाग सके तो रूई लगाकर अपने कान बंद कर ले। जब कहीं कोई मेरी प्रशंसा करने लगता है तब–तब मैं अपने ह्रदय में इस शास्त्र–वचन को दुहराता हूँ किन्तु इस आज्ञा के अनुसार मैं यहाँ से चल नहीं सका। उपर्युक्त आज्ञा में दो उपाय बताए गए है कि हे जीव यदि तू इस आज्ञा के अनुसार न चल सके तो यह सारी प्रशंसा तू कृष्णार्पण कर दे। और

मैं वैसा कर रहा हूँ। धर्म की ऐसी आज्ञाओं और नीति के पालन से निश्चय ही किसी कार्य में जीत मिलती है।

सभ्यता, विनय और नम्रता—इन गुणों पर आजकल इतना कम जोर दिया जाता है कि उससे ऐसा लगता है मानो हमारे चरित्र गठन में उनका कोई स्थान न ही न हो। यदि कोई मनुष्य स्थूल ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो वह वाजीराव बनकर सब लोगों की भर्त्सना करता है और उन्हें धमकाता है और हम उनकी इस असभ्यता को दुधारू गाय की लात के समान सह लेते हैं। इसी तरह यदि कोई मनुष्य सत्य बोलता है तो उसे हम कड़वे वचन की छूट दे देते हैं और जो खादी पहनता है तो वह खादी न पहनने वाले लोगों पर धावा बोल सकता है। उसी तरह जो सविनय अवज्ञा करता है वह ऐसा व्यवहार कर बैठता है मानो उसे अविनय करने की छूट मिली हुई हो। असभ्यों की इस सेना के नायक ब्रह्मचारी, सत्यवादी, खादीवादी अथवा सविनय अवज्ञाकारी कदापि नहीं है। ये चारों अपनी—अपनी प्रतिज्ञा से उतने ही अधिक दूर हैं। जितनी उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा से दूर होती है। और हम यह कह सकते है कि जहाँ विनय नहीं होती, वहाँ विवेक का अभाव होता है और जहाँ विवेक का अभाव होता है, वहाँ कुछ भी नहीं होता। विश्वामित्र की तपस्या तब तक अधूरी सी ही थी, जब तक उन्होंने विनय नहीं सीखा।

विनय और नम्रता शांति की निशानी है, अविनय और उद्धतता अशांति का सूचक है।

मुझे उम्मीद है कि कोई भी मनुष्य विनम्र व्यवहार करने का मतलब झूठ खुशामद करना नहीं समझेगा। विनम्र व्यवहार का अभिप्राय यह भी नहीं कि हम अपने धर्म के प्रति अपने भाव को छिपायें। विनम्र व्यवहार का अभिप्राय तो यह है कि हम अपने धर्म पर आरूढ़ रहते हुए भी दूसरों के प्रति आदर भाव रखें। मैं तिलक तो लगाऊँ, लेकिन तिलक न लगाने वाले का उपहास न करूँ। मैं पूर्व की ओर

मुख करके प्रार्थना करूँ किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि पश्चिम मुख में नमाज पढ़ने वाले भाई का मजाक बनाऊँ।

जहाँ अहम है, वहाँ अविनय और उद्धतता है। जहाँ अहम नहीं है, वहाँ सभ्यता के साथ—साथ स्वाभिमान है। अहमभाव रखने वाले मनुष्य को शरीर का अभिमान होता है। स्वाभिमान को बनाए रखने वाले मनुष्य आत्मा को पहचानकर केवल उसी की चिन्ता करता है और उसके बाद शरीर को गला देने के लिए तैयार रहता है। स्वाभिमान का पुजारी इस संसार में सभी के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करता है, क्योंकि उसे अपने सम्मान के समान ही अन्य लोगों का सम्मान भी प्रिय होता है। वह सबमें अपने को तथा अपने में सबको देखता है, अपने को दूसरों के स्थान पर रखता है। अहंकारी सबसे अलग रहता है। वह अपने को सबसे ऊपर मानकर जगत का काजी बनने की कोशिश में जगत के सम्मुख अपना हल्कापन सिद्ध करता है।

असहयोगी होकर हम ऐसे समझने लगते हैं कि मानों हमने कोई बहुत बड़ा काम कर लिया है, ऐसे ही जैसे कोई मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करके यह मान बैठे कि उसे मान—पत्र लेने का अधिकार हो गया है।

नम्रता के बिना आध्यात्मिक विरासत मिलती ही नहीं है।

सत्य के प्रयोग करते हुए मैंने आनन्द लूटा है और आज भी लूट रहा हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ, मुझे अभी विकट मार्ग तय करना है। इसके लिए मुझे शून्यवत बनना है। मनुष्य जब तक स्वेच्छा से अपने को सबसे नीचे नहीं रखता, तब तक उसे मुक्ति नहीं मिलती। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है और यह अनुभव सिद्ध बात है कि इस नम्रता के बिना मुक्ति कभी नहीं मिलती।

यद्यपि नम्रता के अभाव का अनुभव मैं जगह—जगह करता था। फिर भी नम्रता को व्रतों में स्थान देने से नम्रता के नम्रता न रह जाने का भय लगता था। नम्रता का संपूर्ण अर्थ तो शून्यता है। शून्यता की

प्राप्ति के लिए दूसरे व्रत ले सकते हैं। शून्यता मोक्ष की स्थिति है। मुमुक्षु अथवा सेवक के प्रत्येक कार्य में नम्रता अथवा निराभिमानता न हो तो वह मुमुक्षु नहीं, सेवक नहीं है। वह स्थायी है, अहंकारी है सच्ची नम्रता में दुराग्रह का कोई स्थान नहीं रखता।

नम्रता का अर्थ है अहंकार का आत्यान्तिक क्षय। विचार करने पर मालूम हो सकता है कि इस संसार में जीवमात्र एक रजकण की अपेक्षा अधिक कुछ नहीं है। शरीर के रूप में हमलोग क्षण जीवी हैं। काल के अनन्त चक्र में सौ वर्ष क्या है? परंतु यदि हम इस चक्कर से बाहर हो जाएँ अर्थात कुछ नहीं हो जाएँ तो हम सबकुछ हो जाएँ। कुछ होने का अर्थ है ईश्वर से—परामात्मा (सत्य) से पृथक हो जाना। कुछ का मिट जाना ही परमात्मा में मिल जाना है।

विज्ञान के आधुनिक खोजों के अनुसार पृथ्वी वातावरण में अधर में लटकी हुई है। यदि हमारे प्रति रोष में आकर तनिक भी अपने मार्ग से विचलित हो जाए तो हमारा उसी क्षण नाश हो गाए। लेकिन करोड़ों वर्षों से पृथ्वी अपनी कक्षा में चल रही है और हमें भी निभा रही है। यह है नम्रता की परिसीमा। उस मिट्टी से हम जन्म लेते हैं उसी में हमें मिल जाना है, इतना जानने के बाद अभिमान कैसा ? हम तो रजकण है और हमें रजकण ही बने रहना चाहिए।

संसार का सामना करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए अभिमान और द्वेष के भाव का विकास करने की कोई जरूरत नहीं। ईसा मसीह ने संसार का सामना किया। बुद्ध ने भी अपने युग का विरोध किया, प्रह्लाद ने भी ऐसा ही किया। वे सब नम्रता की प्रतिमूर्ति थे। इसके लिए आत्मविश्वास और ईश्वर में श्रद्धा होनी चाहिए। जो लोग अहंकार की भावना से संसार के विरूद्ध खड़े हुए, अनन्तः उन्हें विजय मिली।

मैं एक मामूली आदमी से अधिक ऊँचा होने का दावा नहीं करता। मुझमें उससे भी कम योग्यता है, जितनी सामान्य मनुष्य में होती है। मेरे इस अहिंसा और ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में कोई बधाई देने लायक बात नहीं है, क्योंकि वे तो वर्षो के प्रयास से मेरे लिए साध्य हुए हैं।

मुझे तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि मैंने जो सिद्धि प्राप्त की है, उसे हर पुरूष और हर स्त्री प्राप्त कर सकती है। वशर्तें कि वह भी मेरी ही तरह प्रयत्न करे और मन में मेरी जैसी ही आशा और आस्था लेकर चले। आस्थाहीन कार्य अगाध समुद्र की थाह लेने को प्रयत्न करने जैसा है।

नम्रता का ढोंग नहीं चलता न सादगी का।

सत्याग्रह

सत्याग्रह एक ऐसी चमकीली तलवार है जिसे हृदय के सान पर चढ़ाकर तेज किया जाता है, दूसरी ओर वह ऐसा उज्जवल प्रकाश भी है, जिससे शत्रु चौंधिया जाता है और सत्य के आगे झुक जाता है—उस सत्य के आगे जो जनरल स्मटस या गांधी से बहुत बड़ा है। वह शत्रु को हार की लज्जा का अनुभव नहीं होने देता और फिर उसे सुधार भी देता है। वह करूणा की ऐसी मनः स्थिति है जिसमें व्यक्ति दूसरों के साथ अपना मानसिक योग साधता है और जिसमें वह दूसरों के लिए कष्ट सहकर ज्यादा शुद्ध और निर्मल बनता है।

सत्याग्रह के अर्थ पर विचार करते हुए देखते है कि लड़ने वालों में सत्य का आग्रह—सत्य का बल होना चाहिए अर्थात उस व्यक्ति को केवल सत्य पर निर्भर रहना चाहिए। सत्याग्रह शरीर बल से अधिक तेजस्वी है और उसके सामने शरीर बल तिनके के समान है। शरीर बल में मुख्य बात यह है कि शक्तिशाली पुरूष अपने शरीर की परवाह न करके संग्राम में जूझता है। सत्याग्रही तो अपने शरीर को कुछ भी नहीं गिनता। उसमें डर तो पैठ ही नहीं सकता। इसलिए वह बाहरी हथियार नहीं बाँधता और मौत का डर रखे बिना अंत तक लड़ता है। अतएव सग्याग्रही में शरीर बल पर निर्भर व्यक्ति के मुकाबले हिम्मत

ज्यादा होनी चाहिए। इस प्रकार सत्याग्रही के लिए सबसे पहले सत्य का सेवन करना, सत्य का आस्था रखना आवश्यक है।

सत्याग्रही में पैसे के प्रति अनासक्ति होनी चाहिए। संपत्ति और सत्य में सदा अनबन रही है और अन्त तक रहेगी। जो संपत्ति से चिपकता है वह सत्य की रक्षा नहीं कर सकता। इसका अर्थ यह नहीं कि सत्याग्रही के पास संपत्ति हो ही नहीं सकती है, किन्तु पैसा उसका परमेश्वर नहीं बन सकता। सत्य का सेवन करते हुए पैसा रहे तो ठीक है; अन्यथा उसको हाथ का मैल समझकर त्यागने में एक पल के लिए भी झिझक न हो।

वस्तुतः जिसकी धर्म में सच्ची आस्था हो वही सत्याग्रही हो सकता है।

सत्याग्रही पहले से विचार करने के बाद सत्याग्रह नहीं करता। जहाँ वह अपनी आत्मा की आवाज के विरूद्ध कोई कार्य हुआ देखेगा वहाँ वह आत्मबल का प्रयोग करेगा। मैंने जब पहली बार सत्याग्रह शुरू किया तब उसे धर्म का अंग माना था। अनुभव से मालूम हुआ कि यही धर्म है और यही चिन्तामणि है और इसलिए वह धर्म के रूप में मुझमें विशेष खिला है। सत्य के सिवा कुछ करना ही नहीं है, ऐसा निश्चय जिसने किया है वह सत्याग्रही है और ऐसे मनुष्य को उचित उपाय हमेशा सूझ जाता है। सारा जीवन सत्यमय होना चाहिए और यह धीरे–धीरे यम नियमादि का पालन करने से होता है। जैसे स्थूल विषयों को समझने के लिए वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ता है, उसी तरह सत्याग्रह का स्वरूप समझने के लिए भी प्रयत्न करना चाहए।

सत्याग्रह यह मानकर चलता है कि ईश्वर है और सत्याग्रही उससे मागदर्शन पाता है। नेता अपनी शक्ति पर नहीं बल्कि ईश्वर की शक्ति पर निर्भर करता है। उसके अंदर की आवाज उसे जैसा आदेश देती है वैसा ही करता है।

सत्य का आग्रह रखने की कला हस्तगत होते ही अन्याय का सामना करने की शक्ति आ ही जाती है।

ईश्वर हम सबमें है। इसके लिए अनेक होते हुए भी हम सब एक है। एक का पाप सबका पाप है। इसलिए हम दूसरों को मारते नहीं, उसके लिए कष्ट सहन करते हैं। सत्याग्रही अपना प्रत्येक काम प्रायश्चित में करता है। इसीसे एण्ड्रयूज बहुधा कहते हैं कि मैं अंग्रेजों की तरफ से प्रायश्चित कर रहा हूँ।

इतना ही नहीं–मरते समय मन के भीतर क्रोध नहीं रहना चाहिए बल्कि मन में ऐसा भाव होना चाहिए ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए हे ईश्वर! तू इस मारने वाले का भला करना। जब कोई इस तरह की मृत्यु का आलिंगन करता है, तब वह सत्याग्रही की मौत मरता है ।

जब तक आप में राग, द्वेष, हिंसा असत्य तनिक भी मात्रा में है तब तक आपको सत्याग्रह का विचारमात्र भी नहीं करना चाहिए।

जिसकी ईश्वर में निष्ठा नहीं है वह सत्याग्रह में नहीं टिक सकता। क्योंकि जब तक सत्याग्रही यह नहीं माने कि मेरे पीछे एक प्रचंड सूक्ष्म शक्ति है जो हर हालत में मुझे बल देगी, तब तक वह जुल्म, क्लेश और अपमान सहकर अपनी अहिंसा, कायम नहीं रख सकता। पराकाष्ठा की निर्दयता एवं क्लेश सहकर भी जालिम के लिए हमारे मन में द्वेष न रहे, यह अहिंसा है। ऐसी अहिंसा मनुष्य अपने पुरूषार्थ से नहीं कर सकता। जब तक किसी तत्व में उसकी इतनी श्रद्धा न हो और वह महसूस न करे कि मेरे पीछे प्रचंड शक्ति खड़ी है तब तक उसे ऐसी निर्दयता, शांति से सहने में बल नहीं मिलेगा। यह शक्ति जो मदद देती है, उसी का नाम ईश्वर है। ऐसे मौके पर भी जालिम पर दिल में तनिक भी रोष न करने का नाम ईश्वर–निष्ठा है।

मैं एक उद्दश्य लेकर 1914 के अंत में अफ्रीका से भारत लौटा था वह उद्देश्य था–जीवन के हर क्षेत्र में हिंसा और झूठ के बजाय सत्य और अहिंसा का मानव मात्र में प्रचार करना। सत्याग्रह के सिद्धांत की कमी पराजय नहीं होती।

विश्वास

संसार इसी प्रकार चल सकता है। हम प्रत्येक सच्चे जान पड़ने वाले मनुष्य पर संदेह करके उसका बहिष्कार कर दें तो वह ईश्वरीय ज्ञान का दावा करना जैसा होगा। मनुष्य के हृदय को जानने वाला तो केवल ईश्वर है।

यदि यह मान भी लिया कि वह व्यक्ति भटक जाएगा तो भी मैं तो निर्भय हूँ। इसमें हमें तो कुछ खोना नहीं पड़ेगा क्योंकि हमारा सिद्धान्त सीमित है। जब तक कोई मनुष्य सत्यवादी और सत्याचारी जान पड़ता है, तब तक उससे हमारा संबंध रहता है और हमारे लिए यह सुखद ही होता है। यदि वह पीछे बदल जाता है, उसमें हानि उसी की होती है, हमारी कोई हानि नहीं होती। हमारे समस्त संघर्ष का अनुभव यही है।

एक महाशब्द है 'बुद्धिवाद'। मुझे भी यह पूरी मात्रा में प्राप्त हुआ था। किन्तु अनुभव ने मुझे इतना नम्र बना दिया है कि मैं बुद्धि की विशिष्ट मर्यादाओं को समझ सकूँ। जिस प्रकार अस्थान में रखे जाने से कोई भी वस्तु कूड़ा गिनी जाती है, उसी प्रकार अपने अनुचित प्रयोग से बुद्धि भी पागलपन कही जाती है। जिस शक्ति का जहाँ तक अधिकार है अगर हम उसका प्रयोग वहीं तक करें तो सब कुछ ठीक बना रहेगा। बुद्धिवादी पुरूष प्रशंसनीय होते हैं किन्तु बुद्धिवाद तब भंयकर राक्षस बन जाता है, जब वह असीम शक्ति का दावा करता है। बुद्धि को ही सर्व शक्तिमान मानना भी बुरा है। मैं एक भी ऐसे बुद्धिवादी को नहीं जानता, जिसने कभी कोई भी काम शुद्ध विश्वास के वशीभूत होकर न किया हो, बल्कि जिसने सभी काम बुद्धि के द्वारा उनकी अच्छाई का निश्चय करके किया हो।

नवयुवकों में आस्था की जगह अनास्था का कारण—यह है कि उनकी दृष्टि में आस्था बुद्धि—जन्य चीज है, आत्मानुभव नहीं। जीवन के संघर्ष में बुद्धि कुछ हद तक तो हमारा साथ देती है लेकिन संकट की घड़ी में दगा दे देती है। आस्था तर्क से परे की चीज है। जब चारों और अंधेरा ही दिखाई पड़ता है और मनुष्य की बुद्धि काम करना बंद कर देती है, उस समय आस्था की ज्योति प्रखर रूप से चमकती है और हमारी मदद को आती है। हमारे नवयुको को ऐसी ही आस्था की जरूरत है और यह तभी आती है जब कोई बुद्धि के घमंड की तिलांजलि देकर अपने आपको उस ईश्वर के सामने पूर्ण रूपेण समर्पित कर देता है।

जहाँ बुद्धि निरूपाय हो जाती है वहाँ श्रद्धा का आरम्भ होता है, अर्थात श्रद्धा बुद्धि से परे है। मेरी इस बात से लोगों के मन में यह आया कि यदि श्रद्धा बुद्धि से परे है तो वह अंधी ही होनी चाहिए। मेरा मत उससे उल्टा है जो श्रद्धा अंधी है वह श्रद्धा ही नहीं है। अगर कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक यह कहे कि आकाश में पुष्प होते हैं तो उसकी बात उचित नहीं मानी जा सकती। करोड़ों मनुष्यों का प्रयत्क्ष अनुभव इससे उल्टा है। आकाश कुसुम की बात मानना श्रद्धा नहीं, घोर अज्ञान है। क्योंकि आकाश में पुष्प है या नहीं यह बात बुद्धिगम्य है और बुद्धि द्वारा इसका नास्तिकत्व सिद्ध हो सकता है। इसके विपरीत जब हम यह कहते हैं कि ईश्वर है तब हमारे कथन के नास्तिकत्व को कोई सिद्ध नहीं कर सकता। बुद्धिवाद ईश्वर के अस्तित्व को असिद्ध करने का कोई कितना ही प्रयत्न करें, हर एक मनुष्य के दिल में इस विषय में शंका तो फिर भी बनी ही रहेगी। उधर करोड़ों का अनुभव ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करता है। किसी भी जमाने में श्रद्धा की पुष्टि के लिए अनुभूत ज्ञान का होना आवश्यक है। क्योंकि आखिर श्रद्धा है। उसे कभी न कभी अनुभव होगा ही। परंतु श्रद्धावान कभी अनुभव की आकांक्षा नहीं करता। क्योंकि श्रद्धा में शंका को स्थान ही नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि श्रद्धामय मनुष्य जड़ रूप या जड़ बन जाता है। जिसमें शुद्ध श्रद्धा है उसकी बुद्धि तेजस्वी रहती है। वह स्वयं

अपनी बुद्धि से जान लेता है और जो वस्तु बुद्धि से भी अधिक है, उससे भी परे है, वह अश्रद्धा है। जहाँ बुद्धि नहीं पहुँचती वहाँ श्रद्धा पहुँच जाती है। बुद्धि की उत्पत्ति का स्थान मस्तिष्क है, श्रद्धा का हृदय। यह तो जगत का अविच्छिन्न अनुभव है कि बुद्धिबल से हृदयबल सहस्रशः अधिक है। श्रद्धावान को कोई परास्त नहीं कर सकता। बुद्धिमान को हमेशा पराजय का डर रहता है। श्रद्धा में विवाद को स्थान नहीं ही है। इसलिए एक ही श्रद्धा दूसरे के काम नहीं आ सकती। एक मनुष्य श्रद्धा से दरिया पार हो जाएगा, मगर यदि दूसरा अंधानुकरण करेगा तो डूब ही जाएगा।

विश्वास प्राप्त करने का एक मात्र साधन विश्वास करना है। मुझमें विश्वास करने का साहस नहीं था। लेकिन आखिरकार मैंने अपना खोया हुआ साहस फिर पा लिया है। भूल स्वीकार और पश्चाताप से अहिंसा की सार्वभौम शक्ति में मेरी श्रद्धा और भी ज्वलंत हो गई।

जो सच्चा जीवन जीना चाहता है, ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जिनमें से कुछ तो सर्वथा अलंघ्य प्रतीत होती है। ऐसे समय में केवल ईश्वर अर्थात–सत्य–में आस्था ही मनुष्य को ढाढस बँधाती है।

तुम्हारा विचार ठीक है कि जो व्यक्ति विश्वास पात्र नहीं है, इसका विश्वास नहीं किया जा सकता। लेकिन मेरे विचार से किसी को संदेह की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। जैसा हम चाहते हैं कि संसार हमारे वचनों का विश्वास करे, वैसे ही हमें दूसरे व्यक्ति के वचनों का विश्वास करना चाहिए। जब वह विश्वास पात्र न निकले तब पश्चातपाप न करे। विश्वास रखने वाला व्यक्ति आज तक जगत में कुछ खोता नहीं है लेकिन विश्वास घात करने वाला व्यक्ति तो करोड़ों की प्राप्ति करता हुआ भी खोता है। जब हमारी आत्मा भ्रष्ट हो जाए तब समझो कि हमने खोया।

भगवान के शब्द कोष में अप्रत्याशित नाम की कोई चीज नहीं है। इस भौतिक संसार में यह घटना क्रम चलता ही रहता है कारण

ये अप्रत्याशित घटनाएँ वे घटनाएँ होती है जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं रहता और उन घटनाओं के बाद हमें अक्सर उनका कोई कारण ढूढ़े नहीं मिलता।

श्रद्धा कोई सुकोमल कली नहीं है जो हलके से तूफानी मौसम में कुम्हला जाए। श्रद्धा तो हिमालय पहाड़ के समान है जो कभी डिग नहीं सकती। कैसा ही जोरदार तूफान क्यों न आए हिमालय की नीव को वह नहीं हिला सकता। मैं नित्य ही ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि जब हिन्दुओं की ओर से मैं निराश हो जाऊँ, तब वह मुझे यह कह सकने की शक्ति दे कि यद्यपि आज तेरी ही सृष्टि ने मुझे निराश कर दिया है तो भी जिस तरह अबोध बच्चा अपनी माँ की छाती से चिपटा रहता है उसी तरह मैं तुमसे चिपटा हुआ हूँ।

विश्वास एक हदतक बुद्धि से आता है और अंत में श्रद्धा से।

उस व्यक्ति से, जो दूसरों के साथ बुरा बर्त्ताव करता है और लोगों को सदा शक की दृष्टि से देखता है और डींग मारता है कि मैंने कभी धोखा नहीं खाया, ऐसा आदमी हजार गुना अच्छा है जो दूसरों पर विश्वास करता है और धोखा खा जाता है। अलबत्ता विश्वास करने के पीछे भावना लालच देने की नहीं होनी चाहिए।

श्रद्धा बुद्धि की पकड़ में आने वाली चीज नहीं है। वह मनःस्थति है, जिस तक हमें उठना, विकास करना होता है और यह विकास अंतर से प्रस्फुटित होता है।

यह तो सच है कि मैं मनुष्यों को अच्छी तरह नहीं परख पाता परंतु जो दूसरे को परखने का दावा करते है, वे भी कहाँ पाते हैं? इसलिए अपने अज्ञान के लिए मुझे खेद नहीं है। मनुष्यों को नहीं परख पाता, इसलिए उनपर विश्वास रखता हूँ।

मुझे सबसे अधिक आशा और संतोष ईश्वर में आस्था होने के परिणामस्वरूप स्वयं अपने विश्वास से मिलता है।

अज्ञानता

अच्छे लोग सन्तानोत्पत्ति करें तो उनकी संतान संसार को सुखमय बनाएगी ऐसा सोचना अहंकार और अज्ञान से भरा जान पड़ता है। अच्छे लोग सांसारिक प्रवृतियों की इच्छा नहीं करते। वे तो संसार की निवृति अथार्त मोक्ष चाहते हैं। अच्छे लोगों के लिए उनके साथी ही संतान रूप है। जब तक इतना भी न माना जाए तब तक मानना चाहिए कि बहुत अज्ञान की अवस्था बनी हुई है।

बनावटीपन और स्वार्थपरता के इस युग में लोग हर नई या असाधारण चीज को शंका की दृष्टि से देखते है।

मृत्यु होने पर जो भोज दिया जाता है उसे मैं असभ्यता मानता हूँ। प्राचीन हो या अर्वाचीन सब बातें बुद्धि की कसौटी पर जाँची जानी चाहिए। जो बातें उस पर खरी नहीं उतर पाती, उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

हमारे यहाँ माता–पिता की बस एक ही महत्वाकांक्षा रहती है और वह यह कि उनके बच्चों का ठीक–ठाक घर में विवाह हो जाए और वे अपने पीछे काफी पैसा और संपत्ति छोड़ जाएँ। पहली कोशिश बच्चो ंको असमय तन और मन से बूढ़ा बना देती है और दूसरे प्रयत्न में वे काहिल और बहुधा दूसरों के बल पर पलने वाले शोषक व्यक्ति बन जाते हैं। हम ब्रह्मचर्य और स्वैच्छिक निष्कांचनता की कठिनाईयों के वर्णन में अतिरंजना करते है और इनको अपनाना साधारण जन की शक्ति से परे बतलाते हैं। हम कहते हैं कि ये व्रत तो महात्मा और योगी साध सकते हैं, हम सांसारियों में इतनी क्षमता कहाँ? हम भूल जाते हैं कि जिस समाज का सामान्य नैतिक स्तर हद से ज्यादा गिरा हुआ हो, उसमें सच्चे महात्मा और योगी पैदा हो ही नहीं सकते।

आत्मनिंदा एक सीमा तक अच्छी चीज है। अपने विषय में अपने मन में असंतोष रखना एक तरह से अच्छा है लेकिन यह असंतोष हद से ज्यादा नहीं होना चाहिए। अमुक सीमा तक अंसतोष के होने से मनुष्य उन्नति करता है लेकिन यदि हम बाल की खाल निकालते रहे और हमेशा ऐसा कहते रहें कि मुझे यह चीज नहीं आती तो हम मूर्ख बनते हैं। हमें प्रसन्न रहना चाहिए और इसके साथ एक प्रकार का असंतोष भी रखना चाहिए तभी हम उन्नति कर सकते हैं।

मिष्ठान भोजन कराने में हजारों रूपये खर्च करना और इसी क्रिया को धर्म समझना तो इसी युग की बलिहारी है। वैष्णव धर्म में 'पराए दुख' का दर्शन ही केन्द्र बिन्दु है। जबकि भावुक कहे जाने वाले वैष्णवों ने उसे विलास का साधन बना डाला है।

कुंभ का दिन आया। मेरे लिए वह धन्य घड़ी थी। मैं यात्रा की भावना से हरिद्वार नहीं गया था। तीर्थ क्षेत्र में पवित्रता की शोध में भटकने का मोह मुझे कभी नहीं रहा। किन्तु 17 लाख लोग पाखंडी नहीं हो सकते। इनमें असंख्य लोग पुण्य कमाने के लिए शुद्धि प्राप्त करने के लिए आए थे, इसमें मुझे कोई शंका न थी। यह कहना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है कि इस प्रकार की श्रद्धा आत्मा को किस हद तक उपर उठाती होगी।

हरिद्वार में मैंने लोगों की धर्म–भावना की अपेक्षा उनका पागलपन उनकी चंचलता, उनका पाखंड और उनकी अव्यवस्था ही अधिक देखी। साधुओं के जमघट को देखकर तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वे सिर्फ मालपुए और खीर खाने के लिए ही जन्में है।

जिस धर्म के अनुयायियों के कारण अन्त्यजों को पानी तक मिलना, दुश्वार हो जाए, उसकी निर्दयता क्या कहा जाए? मैंने सनातन धर्म में इसका कोई आधार नहीं देखा। जो देखना चाहते हैं, वे देख सकते है कि आज सनातन धर्म के नाम पर पाखण्ड

फैल रहा है। हम अपनी पीठ स्वयं नहीं देख सकते, किन्तु अगर दूसरे उसे देखकर उसकी गंदगी की बात हमें बताएँ तो हम उसे नहीं सुनना चाहते।

मुझ जैसे लोग इसी वातावरण में रहकर बड़े हुए हैं। फिर भी अपने पास की गंदगी देख सके हैं। सनातनियों द्वारा भ्रष्ट कहे जाते हैं और सताये जाते हैं लेकिन अब अधिक समय तक इस कलंक को छाती से लगाकर न रख सकेंगे। मेरे समान एक नहीं अनेक हिन्दुओं ने इस पाप को अपनी आँखों देखा है और इसे दूर करने की कोशिश कर रहे हैं।

प्राचीन ग्रंथों में ऐसी भी बातें हम पाते हैं जिसका पहले बाह्य अर्थ किया जाता था और अब आन्तरिक अर्थ किया जाता है। ऐसा एक शब्द यज्ञ है। पशु–हिंसा सच्चा यज्ञ नहीं हैं, पाशविक वृतियों को जलाना शुद्ध यज्ञ है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं। इसलिए जो लोग हिन्दू जाति का सुधार और रक्षा करना चाहता हैं उनको प्राचीन दृष्टांतों से बढ़कर नए सिद्धांत मिलने वाले नहीं है। परंतु उन सिद्धांतों पर अमल करने में नित्य परिवर्त्तन होगा। परिवर्त्तन उन्नति का एक लक्षण है। स्थिरता अवनति का आरम्भकाल है। जगत नित्य, गतिमान है स्थिरता शव में है, वह मृत्यु का लक्षण है योगी की स्थिरता की बात अलग है। योगी की स्थिरता में तीव्रतम गति है। उस स्थिरता में आत्मा की तीव्रतम जागृति है। हम यहाँ जिस स्थिरता की बात कर रहे हैं, उसे दूसरे शब्दों में जड़ता कहा जा सकता है। जड़ता के वशीभूत होकर हम सभी प्राचीन कुप्रथाओं का समर्थन करने को तत्पर हो जाते हैं। हमारी यह जड़ता हमारी प्रगति में रूकावट डालती है।

निठल्ले आदमी हर किसी अफवाह पर भरोसा कर लेते हैं।

ऐसा नहीं कि जो लोग ईश्वर में आस्था रखते हैं, उन्हें ऐसा कोई पट्टा लिख दिया गया कि सदा सुख का अनुभव करते रहो।

मृतक भोज में न धर्म है न कोई अन्य उचित कारण है। केवल मोह और धन से उत्पन्न होने वाला अभिमान ही ऐसे भोज का कारण हो सकता है। धनिक लोग मृत्यु की बाद किसी लोकोपयोगी कार्य के लिए दान क्यों न दें? ऐसा करने से उन्हें यश की प्राप्ति होगी और मृतक की आत्मा को अवश्य ही शांति मिलेगी। ऐसा दान एक प्रकार का श्राद्ध है, स्मारक है।

जो मुनष्य ईश्वर पर विश्वास करता है वह ज्योतिषी के पास कभी नहीं जाएगा।

तो तुम ईश्वर बनना चाहते हो, भगवान के लिए यह मत समझो कि ईमानदारी के ठीकेदार केवल तुम्ही हो।

अशोभनीयता के मिथ्या विचार या दूसरों की भावनाओं को ठेस लगने की आशंका से लोग अक्सर अपनी बात साफ–साफ नहीं, कह पाते और इस प्रकार आगे चलकर पाखंड में फँसने लगते हैं।

अगर एक दिन ऐसा आए कि जब धर्म पुस्तकों का अध्ययन और उनके अर्थ की छूट सिर्फ उन लोगों की ही हो जो उसी धर्म का बिल्ला लगाए हुए हैं, तो वह जगत के लिए एक अशुभ दिन होगा।

हमारी बहुत सी कठिनाईयाँ हमारे अज्ञान से पैदा होती है। अनियंत्रित भावना उतनी ही बेकार है जितनी अयुक्त माप।

मनुष्य, मनुष्य से घृणा करें और उसके खून का प्यासा हो, यह बात मेरी समझ में नहीं आता।

मैं भूत–प्रेत को नहीं मानता। भणसाली भले माना करे। इससे इनकी साधुता में कोई अंतर नहीं आता। लेकिन साधु पुरूष जो कुछ कहते है वह शत–प्रतिशत सही होता है, यह मानने की जरूरत नहीं है। प्लाचेंट शुद्ध ढोंग है।

क्या बात है कि आदमी सच कहने और करने से डरता है झूठ से नहीं ?

असत्यवादी अपने लिए अनेक खिड़कियाँ रखता है। एक नहीं तो दूसरी खिड़की से निकल जाता है और मानता है–मैं कैसा होशियार हूँ? हकीकत में वह अपने लिए बड़ा गड्ढा खोदता है। जिसमें वह पड़ता है।

इस अपूर्ण संसार में कोई भी मनुष्य या धार्मिक संस्था पूर्ण नहीं है। धार्मिक संस्थाएँ युग विशेष की चुनौती और उस समय व्याप्त विशिष्ट परिस्थितियों की प्रतिकार स्वरूप होती है। आज हम ईसा को पूजते हैं। मगर जीवित ईसा को हमने सलीब पर चढ़ा दिया था। पैगम्बरों को पत्थरों से मारना और बाद में उनकी स्मृति में गिरजे बनाना, दुनिया का यह तरीका युग–युगान्तर से चला आ रहा है। अतीत में वे अपने अपराध के लिए कम से कम यह कहकर क्षमा माँग सके थे कि उन्हें नहीं मालूम था कि वे क्या कर रहे हैं। लेकिन हम ऐसा कहकर बच नहीं सकते। जैसा कि कन्फ्यूशियस ने कहा हैः सही क्या है, यह जानना और जानकर न करना कायरता है।

श्राद्ध की विधि को शुद्ध धार्मिक बनाया जा सकता है। इसमें भोजन का कोई स्थान नहीं है। श्राद्ध का अर्थ है–मृत सज्जन का स्मरण, उसके गुणों का कीर्त्तन भजन और उसके अनुसार व्यवहार।

मन

मेरे पास पहले से ही एक ऐसा विद्यार्थी मौजूद है, जिसको सिखाना बहुत कठिन कार्य है और वह विद्यार्थी मैं खुद हूँ अथार्त वह है मेरा अपना मन।

शुद्ध चित्त को किसी बात का बुरा नहीं लगता, उसे किसी का दोष नहीं अखरता। वह किसी का भी बुरा नहीं देखता। यह भव्य स्थिति है।

मनुष्य को मन ही मन दुख अथवा चिंता से नहीं घुलना चाहिए। जिसकी ओर से दुख का अनुभव हुआ हो, उसे तुरंत कह देना चाहिए तभी वह दुख हमारे मन में नहीं रहेगा। हम मन ही मन जो जलते, कुढ़ते रहते हैं, वह भी एक प्रकार का आत्मघात ही है।

जो व्यक्ति स्थिर चित्त नहीं होता, वह उदासवृति का बन जाता है और फिर अपने बारे में तरह–तरह की बुरी बातों की कल्पना करने लगता है। यह अवसाद रोगी की स्थिति है।

सबसे पहले अपनी ओर ध्यान दें। अपने को सँवारकर सेवा के लिए उपयुक्त साधन बनाओ। इस प्रक्रिया को हम तभी आरम्भ कर सकते हैं, जब हमारा हृदय शुद्ध हो।

बुरे विचारों के कारण जब मन मलिन हो उठे तो ऐसे विचारों को मन में आने देने की चेष्टा करने की बजाय हमें किसी अन्य कार्य में मन लगा देना चाहिए। अर्थात उसे उपयुक्त काम से सम्बन्धित विचारों में उलझा देना चाहिए या फिर मन को रामनाम में लगाना, कुछ पढ़ने में लगाना, ऐसे किसी शारीरिक श्रम में लगाना चाहिए, जिसमें मन को ओत–प्रोत करना होता है।

मोहादि शत्रु हमें इतना तंग करते है कि जहाँ से भी उचित मदद मिल जाए, उस का उपयोग करके हमें उनसे अपनी रक्षा करनी चाहिए।

जीवन के उलट फेर से अविचलित, शोक एवं आवेश से अक्षुब्ध मन सबसे बड़ा वरदान है।

मनुष्य सारे संसार के प्रति, छोटे–बड़ों के प्रति असीम सद्भाव बढ़ाएँ। यह सद्भाव अपरिसीमित हो, इसमें विभिन्न या विरोधी हितों का भाव न हो। मानव जितनी देर जागृत–अवस्था में रहे, चाहे वह खड़ा हो, चल रहा हो, बैठा हो या लेटा हुआ हो, सारे समय दृढ़ता से उसी मानसिक स्थिति में रहे, मन की यह स्थिति संसार में सबसे अच्छी स्थिति है।

हमारा मन भोगों में इतना ज्यादा फँसा रहता है कि हम शुद्ध से शुद्ध चीज को भी भोग का बहाना बना लेते है।

मन को मजबूत बनाने के लिए सुबह किए गए निश्चय का दृढ़ता से पालन करें। कुछ दिनों के बाद हफ्ते भर के लिए संकल्प करें, फिर जीवन भर का। व्यर्थ का एक भी विचार मन में कदापि न आने दें। इसी से रामनाम की महिमा है।

चित् और चित्त ये दो भिन्न शब्द हैं लेकिन चित्त की व्युत्पत्ति चित् से हुई है। चित् अथार्त ज्ञान। जिसे ज्ञान है अथवा जो ज्ञान प्राप्त करने के योग्य है, वह अथार्त आत्मा, ऐसा अर्थ किया जा सकता है। वीतराग पुरूष का चित्त प्रसन्न रहता है अर्थात आत्मा प्रसन्न रहती है। चित्त का अर्थ मन भी होता है।

मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है।

जो कर्मेन्द्रियों का दमन करके मन से विषय का सेवन करता है, वह मूर्ख मिथ्याचारी है इसके विपरीत जो मन को काबू में रखकर अनासक्ति पूर्वक कर्मेन्द्रियों से शरीर व्यापार चलाता है, उसका मान

कर्मयोगी के रूप में किया जाता है। इन दोनों श्लोकों में हमारे व्यवहार की कुंजी है। यदि उपवास करते हुए भी मैं मन से अनेक प्रकार के स्वादों का भोग करूँ तो मेरा यह उपवास मूर्ख व्यक्ति का मिथ्याचार है। इससे संसार का कोई लाभ नहीं होगा और वह मुझे पाप योनि की ओर ले जाएगा।

संयम स्वाभाविक होने के लिए मन का साथ मिलना चाहिए। मन का साथ शुद्ध ज्ञान के सिवा नहीं मिलता।

मन में शुद्धतम विचारों को ही स्थान दीजिए और अशुद्ध तथा बेकार के विचार न आने दीजिए। मन को कौन जीत सका है? इसलिए मन को कदापि खाली नहीं रहने देना चाहिए। खाली रहने पर ही उसमें मलिन विचार आएँगे न? इसलिए मनन, स्वाध्याय आदि की महिमा गाई गई है। इसीलिए रामनाम सर्वोत्तम औषधि है।

मन दो प्रकार के हैं। एक नीचे की आरे ले जाता है, दूसरा ऊँचे। इसे हम बराबर सोचें और पहचानें। जैसे हमारी पीठ दूसरा आदमी देखता है, हम नहीं, ऐसे ही हमारे दोष भी हम नहीं देखते।

मनुष्य अपने विचार का पुतला है, शारीरिक दुर्बलता सच्ची दुर्बलता नहीं है, मन की दुर्बलता ही सच्ची दुर्बलता है।

मैंने अपने अनुभव से यह देखा है कि रोगी का स्वस्थ होना उस के मन पर भी निर्भर करता है। भय, क्रोध, अधीरता और उदासीनता से रोग में वृद्धि होती है। मन जितना प्रफुल्लित होगा उतनी ही जल्दी रोग दूर होगा। ऐसा वातावरण तैयार करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे मन प्रसन्न रहे।

निर्भयता

यदि कोई सार्वजनिक कार्य करना चाहता है तो उसे सबसे पहले अभय सद्धि करना चाहिए। सच्ची सार्वजनिक सेवा तभी संभव है जब मान–मर्यादा, धन–संपत्ति, जाति, स्त्री–कुटुम्बी जन और मृत्यु के संबंध में निर्भयता आ जाती है और तभी मोक्ष रूपी पुरूषार्थ सिद्ध किया जा सकता है।

यदि हमें सत्य और अहिंसा का पालन करना है तो हमें अविलंब निर्भयता का पालन करना होगा।

यदि मैं अपने देशवासियों को इतना भर समझा सकूँ कि हमें अंग्रेजों से डरने की जरूरत नहीं है तो फिर हम अंग्रेजों से घृणा करना बंद कर देंगे। वीर पुरूष या स्त्री घृणा कभी नहीं करते। घृणा मूलतः कायरों का दुर्गुण है। असहयोग का अर्थ है–आत्मशुद्धि।

जब तक हिन्दु डरते रहेंगे तब तक झगड़े भी होते ही रहेंगे। जहाँ डरपोक होता है, वहाँ डराने वाला हमेशा मिल ही जाता है। हिन्दुओं को समझ लेना चाहिए कि जब तक वे डरते रहेंगे, तब तक उनकी रक्षा कोई नहीं करेगा। मनुष्य का डर रखना यह सूचित करता है कि हमारा ईश्वर पर अविश्वास है। जिसे यह विश्वास न हो कि ईश्वर हमारे चारो ओर है, सर्वव्यापी है या जिसका यह विश्वास शिथिल हो, वह अपने बाहुबल पर विश्वास रखता है। हिन्दुओं को दोनों में से एक बात प्राप्त करनी चाहिए। यदि ऐसा न करेंगे, तो संभव है हिन्दू जाति नष्ट हो जाए।

संख्या के बल पर तो कायर लोग कूदते हैं। आत्मबल वाला मनुष्य अकेला जूझता है। आत्मबल ही सच्चाबल है और यह निश्चित मानिए कि यह बल तपश्चर्या, त्याग, दृढ़ता, श्रद्धा और नम्रता तथा विजय के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

कोई भी मेरे प्रति चाहे जैसी हिंसा करने का इरादा क्यों न करे, जिस काम को मैं सर्वथा उचित समझता हूँ, उसे करने से मुझे वह नहीं रोक सकता।

कोई व्यक्ति अगर अपनी सच्ची असहायावस्था को निस्संकोच भाव से स्वीकार कर ले तो यह बात उसे कायर नहीं बनाती, बल्कि हो सकता है यह उसके साहसी बनने की शुरूआत हो।

जितना मैं निर्भय हूँ उतना तुम भी बनो। उसके लिए सिर्फ ईश्वर पर श्रद्धा होने की जरूरत है। हम क्या चीज हैं? एक काल्पनिक बिन्दुमात्र जिसे बनाया नहीं जा सकता। वही सबकुछ है। सर्वत्र एवं सर्व यह गीता का वाक्य है ? तो फिर हम हवाई किले क्यों बनाएँ ? जो सूझे और हाथ में आए उसे कर डालें और फिर सिर पर कोई बोझ भी न रखें।

हम ईश्वर के सिवा और किसी के दया पर जीवित नहीं रहना चाहते। गीता हमें निर्भय होने की शिक्षा देती है। यदि आप निर्भय हों तो आपको कोई दबाकर नहीं रख सकता। यदि कोई मुझे सिर झुकाने को कहे–मैं बूढ़ा आदमी हूँ। कोई भी आदमी मुझे धक्का दे सकता है या मारकर गिरा सकता है–और मैं कहूँ कि मैं सिर नहीं झुकाऊँगा तो वह ज्यादा से ज्यादा यही कर कर सकता है कि मुझे मार डाले। यही निर्भयता है, स्वराज्य है।

भय एक ऐसी चीज है, जिसे मैं नापसंद करता हूँ। एक आदमी दूसरे आदमी से क्यों डरे ? मनुष्य को केवल ईश्वर से डरना चाहिए। तब वह अन्य सारे भयों से मुक्ति पा सकता है।

जो बुजदिल है उन्हें सारी दुनिया दबाती है। भगवान भी ऐसे कायरों की मदद नहीं करता। वह कहता है कि मेरे सिवा किसी से डरने का मतलब यह है कि मुझपर विश्वास नहीं है।

जो व्याधि में भगवान को नहीं भूलती है, नर्स इत्यादि का ख्याल रखती है, जो सेवा मिले उससे संतुष्ट रहती है। सेवा कम से कम लेती है, मृत्यु के भेंट के लिए सदा तैयार रहती है, वह सच्ची वीरांगना है। आवेश में आकर युद्ध में मर जाना कनिष्ठ प्रकार की वीरता है।

हमारी कमजोरी ही हमारी सबसे बड़ी दुश्मन है। भय के कारण कमजोरी होती है और भय अपनी भावना में अच्छाईयों के प्रति विश्वास की कमी के कारण है। विश्वास की कमी इस कमी का कारण है। सतत् नश्वर शरीर के प्रति आसक्ति। यदि हम इस शरीर के प्रति अपने मोह को त्याग दें, जिसने हमें बुरी तरह से जकड़ रखा है तो हमारी आत्मा आत्मोत्थान के अपने कार्य के लिए मुक्त हो जाएगी। विश्वास जितना दृढ़ होगा शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी। शक्ति द्वारा भय पर काबू पा लेने पर हम अपनी कमजोरियों पर काबू पा सकते है और तब हम वास्तव में स्वतंत्र हो जाते हैं।

क्रोध

क्रोध भी एक प्रकार का बुखार ही है। ऐसे प्रयोग करके दिखाए जा चुके हैं कि जो व्यक्ति भयभीत है, जो क्रोध से आग बबूला हो रहा है, उसे यदि जहर चढ़े तो उसका असर तत्काल और बहुत शीघ्र होता है।

मनुष्य के सामने क्रोधित होने के कारण उपस्थित होते ही रहते हैं। प्रत्येक अवसर पर क्रोध को रोकना उसका धर्म है और जैसे–जैसे वह अपने क्रोध को रोकता है वैसे–वैसे वह बहादुर बनता जाता है। उसका धीरज बढ़ता है, उसकी हिम्मत और आत्मविश्वास बढ़ता है। उसकी बुद्धि निर्मल होती है। लेकिन जब वह क्रोध को न रोक सके, तब वह अपने पर ही प्रहार करे–यह क्रोध के निवारण करने का सर्वोतम उपाय है।

जब आपको क्रोध आए तब आप अपने मन में सोचे–मेरा यह क्रोध किस पर है? आत्मा अवश्य निर्विकार है, वह क्रोध किस पर कर सकता है? क्रोध को शांत करने का ब्रह्म उपाय मौन है। जब क्रोध हो जाए तो आपको तभी नहीं बोलना चाहिए।

क्रोध आ जाना तो हिंसा करना है। क्रोध तो अहिंसा का बैरी है और अभिमान है उसे खा जाने वाला राक्षस।

सत्य का, अहिंसा का पालन करने के लिए यदि समस्त जगत की मदद की जरूरत हो तब तो मनुष्य पराधीन बन जाए। लेकिन ईश्वर ने ऐसा सुन्दर नियम बनाया है कि समस्त जगत विमुक्त हो तो भी मनुष्य सत्य का, अहिंसा का पालन कर सकता है। यदि हम झगड़ा न करना चाहते हों तो हमारा विरोधी झगड़ा कर ही नहीं सकता है। वह हार मानकर शांत हो जाएगा। क्रोध करने से क्रोध बढ़ता है। वह अग्नि में घी डालने के समान होता है।

क्रोध के लक्षण शराब और अफीम दोनों से मिलते हैं। शराबी की भाँति क्रोधी मनुष्य भी पहले आवेश में लाल–पीला होता है। फिर यदि आवेश के मंद पड़ जाने पर भी क्रोध न घटा हो तो वह अफीम का काम करता है। अफीम की तरह वह दिमाग को कुतरकर खा जाता है। माना गया है कि व्यक्ति क्रोध से कमशः सम्मोह, स्मृतिभ्रंश और बुद्धिनाश को प्राप्त होता है।

क्रोध तो क्रोध पर ही करना चाहिए। विपक्षी मूर्खता करें, इसलिए क्या हम भी वैसा ही करें। बड़े–बूढ़े क्रोध करते है, तब वे भी भूल करते है। वे क्रोध करें तो भी हम जिस बात को सही मानते हैं उसको पकड़े रहें।

क्रोध न आए इसके लिए सबके प्रति उदार बनना चाहिए और हम सबमें है तथा सब हममें है। सबमें एक ही जीवात्मा है इसलिए किसी पर क्रोध करना अपने ऊपर ही क्रोध के समान है।

क्रोघ आता है तो अपने पर ही क्रोध आता है। पूर्ण विजय–आत्मदर्शन से ही संभव है। हमको कोई कैसे भी नीच माने उन पर प्रेम करो, वही अहिंसा बाकी सब माया।

यह बात तो नहीं कि क्रोध नहीं आता, मैं उसे प्रकट नहीं होने देता। धैर्य के गुण का मैं अक्रोध के रूप में अभ्यास करता रहता हूँ और साधारणतया उसमें मुझे सफलता भी मिली है। पर, वास्तव में

जब क्रोध आता है तब मैं उसे दबा पाता हूँ। अभ्यास से यह आदत प्रत्येक मनुष्य डाल सकता है और निरंतर अभ्यास से उसमें उसे सफलता भी मिल सकती है।

अपना देश सब नैतिक बात में सर्वोत्कृष्ट बने और रहे। मनुष्य का स्वाभिान है कि वह आत्मोन्नति करे और करने में मृत्यु से भी न डरे। स्वाभिमान और गौरव की रक्षा के लिए अथवा कुचेष्टा दूर करने के लिए क्रोध क्यों करना चाहिए। मुझे कोई कहता है कि नाक घसीटो। मैं क्रोध न करूँ लेकिन नाक न रगड़ूँ, इसके लिए जो दण्ड मिले उसे प्रसन्नता से सहन करूँ ?

उन्हें मुझ पर गुस्सा करने का हक है। पर मुझ को उस भाई पर गुस्सा करने का हक नहीं है। गुस्सा करने का मतलब है थोड़ा पागल होना। गीता भी कहती है–क्रोधाद् भवति संमोह........ तो मैं, गीता सीखा आदमी गुस्सा कैसे करूँ।

मैं भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव को नहीं बचा सका, इससे अगर नौजवान मुझपर गुस्सा होते हैं तो मुझे आश्चर्य नहीं होता, पर कोई कारण नहीं कि मैं भी उनसे गुस्सा होऊँ। एक तो मेरी जिन्दगी में इस तरह की यह पहली घटना नहीं है। जो आदमी मानव जाति की सेवा करने का दवा करता है, उसका धर्म है कि वह उनपर क्रोध न करे, जिनकी वह स्वयं सेवा करता है। मैं तो अहिंसा को घर्म मानने वाला ठहरा, इसलिए मैं किसी पर कर ही नहीं सकता। पर सेवक अहिंसा–धर्मी हो या न हो, यदि वह सच्चा है तो उसका धर्म यही है कि अपने स्वामी पर क्रोध न करें। उसके लिए क्रोध त्याज्य वस्तु होनी चाहिए। परंतु यदि वह बिना क्रोध किए रह ही न सकता हो तो उसे समाज सेवक का काम छोड़ देना उचित है। मुझे तो ऐसा करना नहीं है। मैं अपना सिर मानव जाति को अर्पण कर चुका हूँ। मेरी गर्दन उतार लेना, दुनिया का एक आसान से आसान काम है।

आश्रम के नियम

सत्य :–असत्य न बोलना या उसका आचरण न करना ही सत्य का अर्थ नहीं है, किन्तु सत्य ही परमेश्वर है और उसके अलावा और कुछ नहीं है।

अहिंसा :–प्राणियों का वध न करना ही अहिंसा नहीं है। अहिंसा अर्थात सूक्ष्म जीवों से लेकर मनुष्य तक सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखना। इस व्रत का पालक घोर अन्याय करने वाले के प्रति भी क्रोध नहीं करता बल्कि उसके प्रति प्रेमभाव रखता है, उसका हित चाहता और करता है।

ब्रह्मचर्य :–ब्रह्मचारी किसी स्त्री या पुरूष पर कुदृष्टि न डाले, केवल इतना ही नहीं बल्कि वह मन से ही विषय का चिंतन या सेवन न करें। यदि वह विवाहित है तो भी पति या पत्नी के साथ विषय भोग न करे और मित्र समझकर निर्मल संबंध रखे।

अस्वाद–भोजन केवल शरीर यात्रा के लिए हो, भोग के लिए कभी नहीं। इस व्रत में स्वाद के लिए उत्सव या भोजन के आग्रह का निषेध है। स्वाद को जीतने के विषय को ज्यादा महत्व नहीं दिया। यदि दिया होता तो हवेली (वल्लभ संप्रदाय का वैष्णव मंदिर) आदि में हर किसी बहाने मिष्ठान भोजन न होते, हर त्यौहार के दिन घी और गुड़ के सीधे न दिए जाते और ब्रह्मभोज भी न होते। आधुनिक ऋृषि और साधु स्वोदन्द्रिय को नहीं जीतते, बल्कि वे उसके वशीभूत दिखाई देते हैं। यह विषय बड़ा है। यदि हम दोष निकालने की दृष्टि से ऐसा कहे तो पाप के भागी होंगे। परंतु जब हमारा मुख्य उद्देश्य अपना और दूसरों का कल्याण करना होता है तब चाहे कोई कितना ही मान्य पुरूष क्यों न हो, उसमें भी अपूर्णता देखें तो उस पर विचार करना हमारा फर्ज है।

गहरा विचार करने पर हम देख सकेंगे कि असत्य, लंपटता, मिथ्याभाषण, चोरी आदि दोष जो हमारे हाथों होते हैं, उनका प्रधान कारण हमारी स्वादेन्द्रिय की स्वच्छन्दता ही है। यदि हम अपने स्वाद को वश में कर लें तो दूसरे विषयों को नष्ट कर पाना बहुत ही सहज है, तो भी अधिक भोजन करने की लालसा रखने को हम पाप नहीं मानते।

मनुष्य खाने के लिए पैदा नहीं हुआ है। और न खाने के लिए जीता है। वह तो अपने कर्त्ता की पहचान करने के लिए जन्मा है और उसी कार्य के लिए जीता है। प्रभु की यह पहचान शरीर के निर्वाह के बिना नहीं हो सकती और खुराक के बिना शरीर का निर्वाह नहीं हो सकता, इसीलिए खुराक लेना अनिवार्य है।

मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वाद को नहीं जीता, वह विषयों को नहीं जीत सकता। स्वाद को जीतना बहुत कठिन है। इस विजय के साथ ही दूसरी विजय संभव बन जाती है।

आप अपनी जीभ के स्वाद के लिए भोजन न करें, बल्कि क्षुधा की निवृति के लिए भोजन करें। विलासी आदमी खाने के लिए जीता है, संयमी आदमी जीवित रहने के लिए खाता है।

स्वाद का रस लेने में पाप नहीं है। लेने की इच्छा होने पर भी न होने का भाव दिखाने में पाप है। फिर चोरी से लेने में पाप है।

इस व्रत का ब्रह्मचर्य के साथ बहुत निकट का संबंध है। मेरा यह अनुभव है कि इस व्रत में सफल हो जाएँ, तो ब्रह्मचर्य अथार्त जनेनन्द्रिय संयम बिल्कुल आसान हो जाए। अस्वाद अथार्त स्वाद न लेना। स्वाद अथार्त रस। जिस तरह औषधि लेते वक्त हम वह स्वादिष्ट है या नहीं इसका विचार किए बिना शरीर के लिए आवश्यक मानकर खाते हैं वैसा ही भोजन के बारे में भी सोचना चाहिए।

अस्वाद व्रत लेने का अर्थ लेते ही संपूर्ण रूप से पालन करने लगना नहीं है। व्रत लें और ईमानदारी से उसका संपूर्ण पालन करने

का दृढ़, प्रयत्न, मन–वचन और कर्म से मृत्यु पर्यन्त करे। अमुक व्रत कठिन है, इसलिए उसकी जरा ढीली व्याख्या करके मन को धोखा न दें। आदर्श को अपनी सुविधा के अनुसर ढ़ालने में असत्य है, हमारा पतन है। आदर्श को स्वतंत्र रूप में जाने, वह चाहे कितना कठिन क्यों न हो तो भी उसको सफल होने का जी जान से प्रयत्न करना ही परमधर्म है। पुरुषार्थ है।

साधक को अपने आहार पर पूरा नियंत्रण रखना पड़ता है। वह जो कुछ खाए सो केवल औषधि रूप में–शरीर रक्षा के लिए खाए, स्वाद के लिए कदापि नहीं।

हम अपने पेट को ही परमेश्वर मान लते हैं और उसकी पूजा में ही अपना जीवन बिताते हैं तो हम पशु–पक्षियों की अपेक्षा हल्के दर्जे के हैं। गहरा विचार करने पर हम देख सकेंगे कि असत्य, लंपटता, मिथ्याभाषण चोरी आदि दोष जो हमारे हाथों होते हैं उनका प्रधान कारण हमारी स्वादेन्द्रिय की स्वच्छता ही है। यदि हम अपने स्वाद को वश में कर लें तो दूसरे विषयों को नष्ट कर पाना बहुत सहज है।

अस्तेय–अपनी कम से कम आवश्यकता से अधिक जो कुछ भी मनुष्य लेता है वह चोरी करता है। अस्तेय का मानी है चोरी न करना। लेकिन अस्तेय का मतलब इससे बहुत आगे है। किसी चीज की हमें जरूरत नहीं, फिर भी हम अगर उसे लें तो चोरी है। जिसकी हमें जरूरत नहीं है। ऐसी कोई भी चीज हमें लेनी ही नहीं चाहिए। सूक्ष्म और आत्मा को नीचे गिराने या रखने वाली चोरी मानसिक मन से की जाने वाली चोरी है। मन से हम किसी की चीज पाने की इच्छा करें या उसपर बुरी नजर डालें, यह चोरी है।

अपरिग्रह–वस्तुओं का संगह नहीं करके अपरिग्रही दिनों–दिन अपने जीवन को और सादा बनाता जाए। अपरिग्रह का संबंध अस्तेय से है। जो असल में चुराया नहीं है, उसे जरूरत न होने पर भी जमा करने से वह चोरी का माल सा बन जाता है। परिग्रह के मानी है

संचय यानी इकट्ठा करना। सत्य की खोज करने वाला, अहिंसा बरतने वाला परिग्रह नहीं कर सकता।

स्वदेशी—मनुष्य सर्वशक्तिमान प्राणी नहीं है। इसलिए वह अपने पड़ोसी की सेवा करके जगत की सेवा करता है, इसी भावना का नाम स्वदेशी है। देश में बनने वाली वस्तुओं का व्यवहार करें।

अभय—किसी भी व्रत का पालन करना निर्भयता के बिना असंभव है। सत्य परायण रहने के इच्छुक व्यक्ति किसी से नहीं डरते, मौत से भी नहीं।

अस्पृश्यता—हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता ने रूढ़ि जमा ली है। यह धर्म नहीं अधर्म है। छूआछूत की भावना अहिंसा के लिए घातक है।

सहिष्णुता—हमारे मन में अपने धर्म के लिए जैसा मान हो, वैसा ही प्रत्येक धर्म के लिए रखना चाहिए।

शारीरिक श्रम—शारीरिक श्रम सभी मनुष्यों के लिए अनिवार्य है। रोटी के लिए हरएक मनुष्य को मजदूरी करनी चाहिए। शरीर को (कमर को) झुकना चाहिए, यह ईश्वर का कानून है। जो यज्ञ किए बिना खाता है, वह चोरी का अन्न खाता है। ऐसा कठिन शाप यज्ञ नहीं करने वाले को दिया गया है। यज्ञ का अर्थ शरीर श्रम या रोटी के लिए की गई मजदूरी ही ठीक बैठता है।

यदि श्रमिक अपना सारा काम ईश्वरार्पण बुद्धि से करे तो उसे आत्मदर्शन हो सकता है। आत्मदर्शन, शारीरिक श्रम करने वाले को ही होता है। क्योंकि 'निर्बल के बल राम'। निर्बल अथार्त शरीर से निर्बल नहीं, यद्यपि उसके भी बल राम ही है। केवल बुद्धि का विकास करने का अर्थ है, राक्षसी बुद्धि का विकास करना। इसलिए केवल बौद्धिक काम करते रहने से हममें आसुरी वृति आ सकती है। इसी से गीता में कहा गया है कि श्रम किए बिना खाना चोरी ही है। श्रम में नम्रता का भाव है, इसलिए वह कर्मयोग है। लेकिन जो मनुष्य केवल निर्वाह के लिए श्रम करता है उसका श्रम कर्मयोग नहीं कहा जाएगा क्योंकि वह

तो केवल पैसों के लिए श्रम करता है। यदि कोई सेवाभाव से, नम्रतापूर्वक, आत्मदर्शन के लिए श्रम करता है तो उसे आत्मदर्शन होता है।

जो शरीर श्रम कर सकते हैं, उसके लिए सदाव्रत खोलना पाप है, उनके लिए काम पैदा करना पुण्य है। मनुष्य मात्र शारीरिक श्रम से जीवन का निर्वाह करे, तभी वे सामाजिक और आत्मद्रोह से बच सकते है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का पूरा और ठीक अर्थ तो ब्रह्म की खोज है। ब्रह्म सबमें बसता है और इसलिए अर्न्तमुख होने से तथा उससे उत्पन्न ज्ञान के सहारे उसकी खोज की जा सकती है। यह अर्न्तज्ञान इन्द्रियों के संपूर्ण संयम के बिना असंभव है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ है सब इन्द्रियों का हर और हर समय मन, वचन और कर्म से संयम ।

विवाह मोक्ष जैसे सर्वोपरि लक्ष्य की सिद्धि के मार्ग में एक बाधा ही है। क्योंकि यह शरीर के बंधन को दृढ़ करता है। इसमें ब्रह्मचर्य बहुत सहायक है क्योंकि यह मनुष्य को अपना जीवन पूर्णतः ईश्वर को अर्पित करने में सक्षम बनाता है।

विवाह प्रथा का पक्ष पोषण करने की क्या आवश्यकता है। उसका प्रचार तो स्वयं होता है किन्तु ब्रह्मचर्य का पक्ष पोषण करना जरूरी मानता हूँ। इससे सृष्टि का अंत नहीं हो जाएगा। इसका जो बड़े से बड़ा तर्क संगत परिणाम होगा वह मानव जाति का उन्मूलन नहीं बल्कि एक उच्चतर धरातल पर पहुँच जाना ही होगा।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है—आत्मा को (ब्रह्म को) पहचानने का मार्ग, अथार्त सब इन्द्रियों का निग्रह। मुख्यतः स्त्री अथवा पुरुष द्वारा मन, वचन और काया से विषय भोग का त्याग।

मेरे तीनों लड़कें ब्रह्मचर्य दशा में मर जाएँ तो मुझे खेद होने के बदले खुशी होगी।

बुढ़ापे में बुद्धि मन्द होने के बजाय तेजस्वी होनी चाहिए। जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे मृत्यु का भय नहीं होता और मृत्यु के समक्ष भी ईश्वर को नहीं भूलता, वह न छटपटाता है और न बहाना बनाता बल्कि हँसते हुए चेहरे से अपने स्वामी के पास जाता है। बह्मचर्य का पालन करते हुए यदि पृथ्वी नेस्तनाबूद भी हो जाए तो उससे हमारा क्या संबंध ? हम कोई ईश्वर तो हैं नहीं जिसने इस पृथ्वी को बनाया है वही इसकी सार सँभाल करेगा।

स्त्री–पुरुष संभोग से अधिक घिनौनी क्रिया की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। वह सन्तानोत्पत्ति का कारण बन जाती है। यह तो ईश्वर की लीला है। किन्तु सन्तानोत्पत्ति कोई कर्त्तव्य है अथवा यदि सन्तानोत्पति न हो तो जगत की कोई हानि हो जाएगी, ऐसा मैं बिल्कुल नही मानता। क्षणभर के लिए मान लें कि उत्पत्ति मात्र बंद हो गई तो फिर सारा विनाश भी समाप्त हो जाएगा। जन्म–मरण के चक्कर से मुक्त हो जाना ही तो मोक्ष है। यही परम सुख माना गया है और बिल्कुल उचित ही है।

मेरे मतानुसार ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए न तो पुरुष को स्त्री से अनुमति लेने की जरूरत है और न स्त्री को पुरुष से, अच्छा है कि इस विषय में दोनों परस्पर एक दूसरे की सहायता करें। इस सहायता की प्राप्ति का प्रयत्न करना उचित है। लेकिन अनुमति मिले या न मिले, जिसकी इच्छा हो, वह ब्रह्मचर्य का पालन करे और उसका लाभ उठाए। संग से बचने के लिए अनुमति लेने की जरूरत नहीं होती। परंतु संग करने के लिए दोनों की अनुमति आवश्यक है। जो पुरूष अपनी पत्नी की अनुमति प्राप्त किए बिना संग करता है, वह बलात्कार का पाप करता है। वह इस तरह ईश्वरीय और सांसारिक दोनों नियमों को भंग करता है।

ब्रह्मचर्य का पालन जितना मुश्किल मालूम होता है, उतना ही सहज है। ब्रह्मचर्य आत्मा का सहजगुण है। और आपकी आत्माएँ मरी नहीं है, बल्कि सुषुप्त है। उन्हें जगा भर लेना है। उन्हें जगाना इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम नास्तिक हो गए हैं। आपके मन में ज्योंही ही श्रद्धा आएगी यह बिल्कुल सहज बन जाएगा। परमात्मा की कृपा श्रद्धा से ही मिलती है। तब ब्रह्मचर्य पालन प्रयत्न–साध्य एवं कष्ट–साध्य नहीं रह जाता, बल्कि उससे शांति और आनंद की प्राप्ति होती। यह सबकुछ इसलिए कह रहा हूँ कि मुझे इसके आनन्द का अनुभव हो चुका है।

यदि आप विवाहित हैं तो याद रखें कि आपकी पत्नी आपकी सहचरी, साथिन और मित्र है, भोग–विलास का साधन नहीं। संयम आपके जीवन का नियम है। इसलिए सहवास तभी किया जाना चाहिए जब पति और पत्नी दोनों की इच्छा हो और उसमें भी उन नियमों का ध्यान रखा जाना चाहिए जिनके संबंध में स्पष्ट ही दोनों की राय एक हो।

मैं ब्रह्मचर्य और विधवा पुनर्विवाह का एक साथ समर्थन करने में तब तक कोई असंगति नहीं देखता, जब तक मैं ये दोनों चीजें एक ही व्यक्ति के सन्दर्भ में न कहूँ। हालाँकि मैं चाहूँगा कि सभी नौजवान ब्रह्मचारी हों और रहें लेकिन मैं ऐसे लोगों के विवाह का समर्थन करने में बल्कि उनका विवाह करवाने में नहीं हिचकता जो आत्मसंयम करना असंभव मानते हैं। अवश्य जब मैं बाल–विधवाओं के विवाह का समर्थन करता हूँ तो ऐसा मानकर चलता हूँ कि वे वही सुख चाहती हैं जिसकी सभी जीव कामना करते हैं और केवल कुछ मानव ही प्रयत्नपूर्वक आत्म–संयम कर पाते हैं। ब्रह्मचर्य कोई ऐसी चीज नहीं है जो ऊपर से थोप दी जाए और बाल–विधवाओं को अविवाहित रहने के लिए विवश करना पाप है।

मेरा और मेरे साथियों का अनुभव तो ऐसा है कि अगर पति–पत्नी स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करें तो आत्यन्तिक सुख पा सकते हैं,

अपने सुख की वृद्धि का नित्य अनुभव कर सकते हैं। ब्रह्मचर्य शिक्षित–अशिक्षित का भेद नहीं करती। मैं ऐसी अशिक्षित स्त्रियों को जानता हूँ, जो विवाहित हैं और ब्रह्मचर्य का पालन कर रही है। ब्रह्मचर्य की शक्ति अपरिमित है। बहुत से मामले में मेरा अनुभव है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पति स्वयं विकारों से मुक्त न होने के कारण अपने प्रयत्नों का प्रभाव अपनी पत्नी पर नहीं डाल पाता।

विद्यार्थी अवस्था में विद्यार्थियों का विवाह जाल में फँसना सर्वथा अनुचित है, धर्मविरूद्ध है। धर्म हमें सिखाता है कि जो विद्यार्थी काल में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, उसे गृहस्थाश्रम में प्रवेश का अधिकार नहीं।

हमारे व्रतों में दूसरा व्रत ब्रह्मचर्य का है। ठीक तरह से देखें तो दूसरे सभी व्रत सत्य के व्रत से ही उत्पन्न होते है। जिस मनुष्य ने सत्य का वरण किया है और उसी की उपासना करता है वह दूसरी किसी वस्तु की आराधना करे तो व्यभिचारी ठहरेगा। फिर किसी विकार की आराधना कैसे की जा सकती है? कोई भोग–विलासी, सत्य को पा सका है इसका एक भी उदाहरण हमारे पास नहीं है।

अहिंसा पालन को लें तो उसका पूर्ण पालन ब्रह्मचर्य के बिना असंभव है। अहिंसा अथार्त सर्वव्यापी प्रेम। अहिंसा व्रत का पालन करने वाला विवाह नहीं करता। विवाह के बाहर के विकार का तो पूछना ही क्या।

तो विवाहित व्यक्ति सत्य को कैसे प्राप्त करे इसका रास्ता है वे भी अविवाहित जैसे हो जाए। विवाहित स्त्री–पुरुष एक दूसरे को भाई–बहन मानने लगें तो इस तरह सभी जंजालों से मुक्त हो जाएँ। जगत में सभी स्त्रियाँ बहने हैं, माताएँ हैं और बेटियाँ हैं। यह विचार ही मनुष्य को एकदम ऊँचा ले जाने वाला है और बंधन से मुक्त करने वाला बन जाता है। इसमें पति–पत्नी कुछ खो नहीं बैठते, बल्कि अपनी पूँजी में में बृद्धि करते हैं, कुटुम्ब में वृद्धि करते हैं।

विकार रूपी मैल निकाल देने से प्रेम बढ़ता है। विकार चले जाने से एक दूसरे की सेवा ज्यादा अच्छी हो सकती है। आपसी क्लेश अक्सर कम हो जाता है। जहाँ प्रेम स्वार्थी है, एकांगी है, वहाँ क्लेश को ज्यादा अवकाश रहता है।

इस ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और काया से करना चाहिए। जो शरीर को काबू में रखता दिखाई देता है किन्तु मन से विकारों का पोषण करता है। वह मूढ़ मिथ्याचारी है। गीताजी भी ऐसा कहते हैं सबने अनुभव भी किया होगा। मन को विकारी रहने देने में और शरीर को दबाने के प्रयत्न में नुकसान ही है। जहाँ मन है, वहाँ अन्ततः शरीर भी जर्बदस्ती चला जाता है। यही एक भेद समझ लेने की आवश्यकता है। मन को विकारवश होने देना एक बात है। मन अपने आप अनिच्छा से या जर्बदस्ती विकारवश हो जाए या हुआ करे यह अलग बात है। इन विकारों में हम सहायक न हो तो अन्त में जीत ही है।

सिर्फ जननेन्द्रिय विकार का विरोध ही ब्रह्मचर्य नहीं है। यह अधूरी और सदोष व्याख्या है। विषय मात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ है–ब्रह्म की, सत्य की शोध में चर्चा अथार्त तत्संबंधी आचार।

जो लोग ब्रह्मचर्य के मर्म को समझते हैं और उसका पालन करते है उनके लिए यह बहुत श्रेष्ठ वस्तु है। लेकिन यह तो स्वीकार करना ही होगा कि देहधारियों के लिए यह सर्वथा असाधारण चीज है। इसलिए विवाहावस्था और उसके परिणामों के प्रति असहिष्णुता शायद अनुचित है। आखिर गौतम, बुद्ध, ईसा जरथुस्त्र, मुहम्मद, राम, कृष्ण, संत फ्रांसिस जैसे अन्य असंख्य नर–नारियाँ इसी विवाहावस्था की ही तो देन है।

संयमित संभोग कम हानिकारक है पर ब्रह्मचर्य श्रेयस्कर है। तमाम प्रयोगों में से सच्चे ब्रह्मचर्य की सिद्धि का केवल एक ही उदाहरण

सामने आए लेकिन हमें इसके लिए प्रयत्न करना ही है। मोक्ष के लिए प्रयत्न बहुतेरे करते हैं। हमें इतने से ही संतुष्ट होना पड़ेगा कि विवाहित लोग उत्तरोत्तर ब्रह्मचर्य को अपनावें और केवल कुछ ही लोग आजीवन ब्रह्मचारी रहें।

मनुष्य यदि पशु से श्रेष्ठ है तो उसकी श्रेष्ठता ब्रह्मचर्य पालन की उसकी शक्ति में है।

जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करने की इच्छा करता है, वह विवाह न करे। किन्तु जिसे विवाह करने की इच्छा हो, वह ब्रह्मचर्य की बात अपने मन के किसी कोने में सहेजकर विवाह कर ले बाद में पत्नी की इच्छा जानकर जितना संयम वह पाल सकता हो उतना पाले।

आजीवन ब्रह्मचर्य एक ऐसी वस्तु है जिसकी कामना हमें अपनी समस्त श्रद्धा के साथ करनी चाहिए। पर जो अपनी विषय वासना को काबू में नहीं रख सकता, जिसका मन और इन्द्रियाँ काम तृप्ति के लिए तड़प रही हैं, वह तो निश्चय ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके शुद्ध गहस्थ जीवन बिताये, उसके लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का प्रयास व्यर्थ है। आदर्श में तो वह वही अखंड श्रद्धा रखेगा पर उस आदर्श तक वह आत्मसंयम की क्रमिक साधना के द्वारा धीरे–धीरे ही पहुँचने का प्रयत्न करेगा।

ब्रह्मचर्य के अर्थ की बात–वह आचरण जिससे कोई व्यक्ति ब्रह्म या परमात्मा के संपर्क में आता है। इस आचरण में सब इन्द्रियों का संपूर्ण संयम शामिल है। इस शब्द का यही सच्चा और सुसंगत अर्थ है।

ब्रह्मचर्य का पालन करना जितना शक्य है करना चाहिए। यहाँ बह्मचर्य का मतलब केवल शारीरिक आत्म–संयम नहीं है इसका मतलब इससे बहुत अधिक है। इसका मतलब हैं समस्त इन्द्रियों पर संपूर्ण नियंत्रण। अशुद्ध विचार ब्रह्मचर्य का भंग है। इसी तरह क्रोध भी।

ब्रह्मचर्य की मेरी सफलता या असफलता का निर्णय मेरी मृत्यु के बाद ही निकल सकेगा। मेरे लिए तो यह प्रयोग ही है। मैं स्वयं भी दाबे के साथ नहीं कह सकता कि मैं सफल ही हुआ हूँ। मेरी कामना शुकदेव जी की स्थिति को पहुँचने की है।

ब्रह्मचर्य की मैंने जो व्याख्या की है, वह अब भी कायम है। उसके अनुसार जो मनुष्य मन से विकारग्रस्त हो जाए समझना चाहिए कि उसका ब्रह्मचर्य स्खलित हो गया। जो मनुष्य विचार में निर्विकार नहीं वह पूर्ण ब्रह्मचारी कभी नहीं माना जा सकता। मैं अभी उक्त व्याख्या तक नहीं पहुँच चुका हूँ, लेकिन काफी आगे बढ़ गया हूँ। विचार की निर्विकारिता तब तक नहीं आती जब तक कि पर का दर्शन नहीं होता। जब विचार पर पूरा अधिकार हो जाता है तब पुरुष स्त्री को और स्त्री पुरुष को अपने में समाहित कर लेती है। हालाँकि ऐसा ब्रह्मचारी मेरे देखने में नहीं आया। ऐसा ब्रह्मचारी बनने के लिए मैं महाप्रयत्न कर रहा हूँ। जब तक ब्रह्मचर्य की उक्त स्थिति प्राप्त नहीं होती तब तक मनुष्य अहिंसा की उस स्थिति तक नहीं पहुँच सकता जहाँ तक पहुँचना उसके लिए संभव है।

स्त्री मात्र को देखकर जिसके मन में विकार आता हो उसे ब्रह्मचर्य को छोड़कर अपनी स्त्री के साथ मर्यादापूर्वक व्यवहार करना चाहिए और विवाहित न हो तो विवाह का विचार करना चाहिए।

क्षणिक सुख के लिए मैं अपना तेज क्यों खोंऊँ ? जिस वीर्य में प्रजोत्पत्ति की शक्ति भरी हुई है, उसका पतन क्यों होने दूँ और ईश्वर की दी हुई देन का दुरूपयोग करके मैं ईश्वर को छलूँ क्यों ? जिस वीर्य का संग्रह करके मैं वीर्यवान बन सकता हूँ, उसका पतन क्यों हो ? इस विचार का मनन यदि साधक नित्य करे और रोज ईश्वर–कृपा की याचना करे तो संभवतः वह इस जन्म में ही ब्रह्मचारी बन सकता है।

जिस तरह मेरे अन्दर ब्रह्मचर्य का उदय हुआ उसके कारण मैं माता के रूप में स्त्रियों के प्रति दुर्निवार रूप से आकृष्ट हुआ। स्त्रियाँ

मेरे लिए इतनी पवित्र हो गई कि मैं उनके प्रति वासनामय प्रेम का ख्याल नहीं कर सकता।

जो मनुष्य कान से वीभत्स या अश्लील बातें सुनने में रस लेते हैं, आँख से स्त्री की तरफ देखने में रस लेते हैं, वे सब ब्रह्मचर्य का उल्लंघन करते हैं। अनेक विद्यार्थी और शिक्षक ब्रह्मचर्य पालन में हताश हो जाते हैं। इसका कारण है कि वे श्रवण–दर्शन, वाचन भाषण आदि की मर्यादा नहीं जानते और पूछते हैं ब्रह्चर्य का पालन कैसे करें? प्रयत्न तो वे जरा भी नहीं करते।

मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य का अर्थ है कामवासना से रहित होना। उसका अर्थ नंपुसकता नहीं बल्कि उर्ध्वरता की अवस्था है। जिसमें वीर्य अध्यात्म तेज में परिणत हो जाता है। यदि मैं उस निर्विकार अवस्था में पहुँच जाता तो मैं जिस बात का ख्याल करता वह हो जाता। तब मुझे तर्क–वितर्क करने की जरूरत न होती।

कृत्रिम उपाय से बच्चों का होना रोकने से नुकसान ही होता है। नैतिकता जैसी कोई चीज ही नहीं रहती। मेरी राय में बिना संयम के सच्ची सेवा तो हो ही नहीं सकती। जो ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहते हैं, उन्हें सादा और संयम का जीवन बिताना चाहिए। अपना सारा समय शारीरिक तथा मानसिक सत्कर्मों में बिताना चाहिए। वाचन भी ऐसा करना चाहिए जिससे सद्विचारों को प्रोत्साहन मिले।

ब्रह्मचर्य का मूल अर्थ है ब्रह्म की प्राप्ति के लिए चर्या। संयम के बिना ब्रह्म मिल ही नहीं सकता। सच्चे ब्रह्मचारी की वाणी में, विचार में और आचार में एक अनोखा प्रभाव देखने में आता है।

ऐसा ब्रह्मचर्य स्त्रियों के साथ पवित्र संबंध रखने से या उनके आवश्यक स्पर्श से भंग नहीं होता। ऐसे ब्रह्मचारी के लिए स्त्री या पुरुष का भेद मिट सा जाता है। इस वाक्य का कोई अनर्थ न करें।

मैं जानबूझ कर मन से नंपुसक बनना चाहता हूँ। ऐसे बना तो शरीर से बन जाना ही है। यही सही ब्रह्मचर्य है।

पुरुष का स्त्रियों के साथ ऐसा व्यवहार हो जैसा पुरुषों के साथ हो। दो पुरुष जान बूझकर एक दूसरे को नहीं सटेंगे, न ही एक दूसरे का चुम्बन लेंगे, न ही एक दूसरे के साथ सोयेंगे। लेकिन कारण वशात पुरुष का स्पर्श करेगा, साथ बैठेगा, एक पाट पर बैठेगा। ऐसे ही हम स्त्रियों के साथ वर्त्तन करें। हम हो सके तो लिंग को भूलें। स्त्री–पुरुष में जो भेद है, वह सामान्य व्यवहार में नहीं है। उस भेद का ज्ञान व्यभिचार के लिए होता है या व्यभिचार के बाहर प्रजोत्पत्ति के लिए होता है।

मैं 1901 से ब्रह्मचारी का जीवन जी रहा हूँ और आज 1901 से बेहतर ब्रह्मचारी हूँ। मेरे प्रयोग ने अगर कुछ किया है तो यह कि मैं जो था, उससे ज्यादा पक्का बना। प्रयोग संपूर्ण ब्रह्मचारी बनने के लिए था और ईश्वरेच्छा होगी तो संपूर्ण बनने का कारण होगा।

ब्रह्मचर्य का मार्ग जितना कठिन है उतना भव्य भी है। मनुष्य जितना गहराई में पैठेगा उतनी ही उसकी भव्यता, पवित्रता और उसमें निहित अच्छाई का अनुभव करेगा, इसके लिए रामनाम सर्वोत्तम वस्तु है। रामनाम कण्ठगत नहीं हृदयगत होना चाहिए। साथ में अविश्रान्त सेवा–कार्य तो चाहिए। भोजन उतना ही करना चाहिए, जितने से शरीर टिका रहे, रामनाम इन आवश्यक शर्त्तों का विकल्प नहीं है बल्कि वे तो रामनाम में ही निहित हैं और इस बात की निशानी भी है कि रामनाम हृदयगत हो गया है।

खुदा की आराधना करते हुए जो नंपुसकत्व की स्थिति प्राप्त करते है वैसी ही मेरी भी कामना है। मैं परमात्मा को खोजने की भावना से यह कर रहा हूँ, जिसे मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। मैं जो यज्ञ कर रहा हूँ, यह उसका अभिन्न अंग है।

मैं कहता हूँ ब्रह्मचर्य के मार्ग में आने वाले काँटो–पत्थरों और बाधाओं से कतरायेंगे तो हम उसपर नहीं चल सकेंगे। हो सकता है कि हमारे पैर लड़खड़ा जाएँ, हमारे पाँवों से खून बहने लगे, कदाचित

हम नष्ट भी हो जाएँ, लेकिन हम इससे अपना मुँह नहीं मोड़ सकते।

यदि मैं अपने प्रयोग में सफल हुआ तो संसार को उससे लाभ होगा। दूसरी ओर यदि मैं कपटी और गुमराह, मूर्ख व्यक्ति सिद्ध हुआ तो संसार मुझे अस्वीकार कर देगा और मेरा परित्याग कर दिया जाएगा। दोनों तरफ से संसार को लाभ ही होगा।

ब्रह्मचर्य प्रयोग नहीं है मेरे यज्ञ का अभिन्न अंग है। व्यक्ति प्रयोग को छोड़ सकता है लेकिन अपने कर्त्तव्य का त्याग नहीं कर सकता। अब यदि मैं किसी चीज को अपने यज्ञ का अंग समझता हूँ तो मैं उसका त्याग नहीं कर सकता। भले ही लोकमत पूर्णतया मेरे विरूद्ध हो। मैं आत्मशुद्धि के कार्य में लगा हुआ हूँ। पाँच प्रमुख नियम मेरे इस आध्यात्मिक प्रयत्न के पाँच आधारभूत स्तंभ है। ब्रह्मचर्य उनमें से एक है। लेकिन पाँचों अविभाज्य और एक है। वे परस्पर सम्बद्ध और एक दूसरे पर निर्भर है। इनमें से यदि एक भंग हो जाता है तो सब भंग हो जाएँगे। यदि मैं किसी के लिए व्यवहार में ब्रह्मचर्य के पीछे हटता हूँ तो मैं न केवल ब्रह्मचर्य से पीछे हटूँगा बल्कि सत्य अहिंसा और अन्य सबका त्याग करूँगा। मैं अन्य बातों में कथनी और करनी में भेद नहीं करता। यदि मैं ब्रह्मचर्य के संबंध में शिथिलता बरतता हूँ तो क्या इससे मेरा ब्रह्मचर्य कुण्ठित नहीं हो जाएगा और सत्य का आचरण दूषित न होगा ?

यदि आदमी रूढ़िवादी परम्पराओं की लीक से हटकर चलने को तैयार न हो तो किसी प्रकार की नैतिक प्रगति या सुधार संभव नहीं है। हमने जो अपने को सामाजिक रूढ़ियों के फौलादी शिकंजों में जकड़ जाने दिया, उसमें हमने अपना अहित किया है। शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जिस नौ परतो वाली दीवार का जिक्र है वह मेरी दृष्टि में अपर्याप्त और दोषपूर्ण है। स्वयं अपने लिए उन नियमो को मैंने कभी स्वीकार नहीं किया है। सुरक्षा के उस कवच के पीछे रहकर तो मेरी राय में सच्चे ब्रह्मचर्य के लिए प्रयत्न

भी नहीं किया जा सकता। सुधारक के लिए अन्य लोगों के विचार बदलने तक रूके रहना संभव नहीं है। उसे तो मौका मिलने पर सारी दुनिया के विरोध के बावजूद अकेले ही आगे बढ़ना होगा। आप जिस ब्रह्मचर्य की दुहाई देते हैं, मैं अपनी सूझ–बूझ अध्ययन और अनुभव के प्रकाश में उस ब्रह्मचर्य की मौजूदा व्याख्या की परख करना चाहता हूँ। उसे और व्यापक बनाना चाहता हूँ और उसमें सुधार करना चाहता हूँ। अतः जब मेरे सामने कोई अवसर आता है तो उससे मैं कतराता नहीं और न ही उससे दूर भागता हूँ। इसके विपरीत मैं अपना धर्म मानता हूँ कि उसका सामना किया जाए और पता लगाया जाए कि वह रास्ता कहाँ जाता है और मैं कहाँ खड़ा हूँ। ब्रह्मचर्य के सच्चे साधक के लिए नारी सम्पर्क से बचने की कोशिश करना या भय से दूर भागना मेरी दृष्टि में अशोभनीय है।

आप लोग सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदि के मामले में किसी भूल को उतना गंभीर नहीं मानते। लेकिन तथाकथित, ब्रह्मचर्य अर्थात स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्धों के भंग से आप एकदम परेशान हो उठते हैं। मैं ब्रह्मचर्य की इस कल्पना को संकीर्ण दकियानूसी और अधोगामी मानता हूँ। मेरे लिए सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य ये तीनों आदर्श बराबर का महत्व रखते हैं। इन तीनों के लिए हमें समान रूप से प्रयत्नशील होना चाहिए और इसमें से किसी के भी पालन में भूल होना मेरे लिए चिन्ता का विषय है।

स्त्री–स्पर्श के निषेध पालन को मैं ब्रह्मचर्य नहीं मानता। मेरे लिए ब्रह्मचर्य का अर्थ है वह विचार और आचरण, जो ईश्वर से हमारा संपर्क स्थापित करे और उसका साक्षात्कार कराये।

वह व्यक्ति ब्रह्मचारी है जिसका मन काम–वासना से मुक्त है। जो परमात्मा का निरंतर चिंतन करते हुए ऐसी अवस्था में पहुँच गया है कि जाने अनजाने उसका वीर्य स्खलन नहीं होगा, जो सुन्दर से सुन्दर स्त्री के साथ नग्न लेटे और उसके बाबजूद उसको कामो

चेजना न होगा। ऐसा व्यक्ति वही हो सकता है जो मिथ्या भाषण न करे, जो संसार के किसी भी व्यक्ति का अहित चिन्तन न करता हो और न अहित करता हो, जो क्रोध और द्वेष की भावना से सर्वथा मुक्त हो और भगवदगीता में बताए अर्थ के अनुसार अनासक्त हो। ऐसा व्यक्ति पूर्ण ब्रह्मचारी है।

ब्रह्मचारी का शाब्दिक अर्थ है—एक ऐसा व्यक्ति जो प्रतिदिन सुस्थिर गति से परमात्मा की ओर बढ़ रहा है और जो हर कार्य केवल इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए करता है।

ब्रह्मचर्य का मतलब जो हमें ब्रह्म की तरफ ले जाए। इसमें जननेन्द्रिय का संयम आ जाता है। वह संयम मन—वाणी और कर्म से होना चाहिए। अगर कोई मन से भोग करे और वाणी से तथा स्थूल कर्म पर काबू न रखे तो वह ब्रह्मचर्य नहीं चलेगा।

विवाहित हैं तो क्या हुआ ? सिर्फ प्रजोत्पत्ति के लिए इस व्रत को तोड़े या चार—पाँच साल में एक बार। विवाहित स्त्री—पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने विवाह का अनुचित अर्थ न करे। पच्चीस से तीस साल तक विवाह नहीं करने का प्रण करना चाहिए। बालको की शादी करके उन्हें संसार की खटपट जबाबदेहियों में उलझा देने से बढ़कर उनका और बड़ा अहित क्या हो सकता है। जो थोड़े समय के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, वे भी अपने मन और तन में बढ़ी हुई शक्ति का अनुभव कर सकेंगे।

नीति-मार्ग

हमारे मन में हर एक मनुष्य के लिए दया नहीं जगती तब तक हमने न तो नीति—धर्म का पालन किया और न उसे जाना ही है। उत्कृष्ट नैतिकता, सार्वजनिक होनी चाहिए। अपने संबंध में हमें यह सोचकर चलना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य का हम पर हक है, यानि सदा उसकी सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है। किन्तु अपने बारे में हमें यह सोचकर चलना चाहिए कि हमारा किसी पर हक नहीं है।

अंत में ऐसा वक्त आता है जब मनुष्य इच्छापूर्वक सोच समझकर, नुकसान हो या फायदा मरे या जीयें, फिर भी दृढ़ निश्चय से सर्वस्व बलिदान की भावना लेकर पीछे देखें बिना चला जाता है। तब कहा जा सकता है कि उसपर सच्ची नीति का रंग चढ़ा है।

हम कितनी ही भलाई क्यों न करें हमें उसका कभी गुमान नहीं करना चाहिए और न उसकी कीमत आँकनी चाहिए बल्कि निरंतर यह इच्छा करते रहना चाहिए कि हम और अधिक अच्छे बने और अधिक भलाई करें। ऐसी इच्छाओं की पूर्ति के लिए किए गए आचरण एवं व्यवहार का नाम ही सच्ची—नीति है।

यदि पूर्ण बनना है तो हमें आज से ही हर तरह के कष्ट उठाकर नीति के अनुसार आचरण करना चाहिए।

खुदा या ईश्वर सर्वशक्तिमान है, संपूर्ण है। उसकी दया उसकी अच्छाई तथा उसके न्याय का पार नहीं हैं। यदि यह सत्य है तो परित्याग कर ही कैसे सकते है। नीति के अनुसार आचरण करने वाला यदि असफल होता दिखाई दे तो उसमें नीति का कोई दोष नहीं है।

नीति मार्ग में नीति का पालन करते हुए उसका फल प्राप्त करने की बात तो उठती ही नहीं। मनुष्य भलाई करता है तो कुछ

प्रशंसा प्राप्त करने के लिए नहीं, वह भलाई किए बिना रह ही नहीं सकता।

नैतिक काम तो अपनी ओर से स्वयं स्फूर्त होना चाहिए। जो मनुष्य अपनी बुद्धि और मस्तिष्क का उपभोग नहीं करता वह बाढ़ के पानी में लकड़ी की तरह बहता है। वह नीति क्या समझेगा?

सम्मान पाने के लिए की गई भलाई नीति रहित है और दया से प्रेरित कार्य नीति सहित है।

सर्वोच्च नैतिकता का निर्वाह करने वाले मनुष्य से धनसंग्रह किया ही नहीं जा सकता। ऐसी नैतिकता कम दिखाई देती है। फिर भी नैतिक व्यक्ति को कौम की सेवा करनी हो और साथ ही नित्य सच्चाई बरतनी हो तो मार भी खानी पड़ेगी। इसमें यदि दुख न माने तो आत्मा को अधिक सुख और शांति प्राप्त होता है।

सच्ची बहादुरी में सज्जनता और सीधापन सैदव रहता है।

अन्याय से कमाए हुए पैसों में से कुछ पैसा तो लोकोपयोगी कहलाने वाले कार्यों में दे देते हैं और वाह–वाही लूटते हैं। उन्हें भला और नीतिवान माना जाता है। मतलब यह है कि इस सभ्यता में अनीति नीति बन बैठी है।

मैंने अनुभव से जाना है कि जो व्यक्ति देश–हित के लिए सत्याग्रही होना चाहते हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, गरीबी अपनानी चाहिए। सत्य का तो पालन करना ही चाहिए और निर्भीकता होनी चाहिए।

वस्तुओं के अधिक उपयोग से अहिंसा व्रत भंग होता है। यदि हम अस्तेय भाव से इन वस्तुओं का उपयोग कम करे तो हममें उदारता बढ़ेगी। यदि हम अहिंसा भाव से उपयोग करें तो दया–भाव बढ़ेगा। यदि हम जीवमात्र को अभय दें तो इसमें दया और प्रेम का भाव आता है। जो अपना भाव ऐसा बना लेगा उससे कोई भी जीव स्वप्न में भी वैर–भाव न मानेगा।

जिसे भूल कहने का हक नहीं, वह कभी उन्नति नहीं कर सकता।

जिसने आदर करना नहीं सीखा उसे आदर नहीं मिलता।

यदि कोई अपनी बात दृढ़तापूर्वक कहता है तो ऊपर से देखने पर लोग कभी–कभी कठोरता मान लेते हैं। लेकिन अच्छी तरह से देखा जाए तो ऐसी दृढ़ता में शुद्ध कोमलता रहती है। काँपते हाथों से नश्तर लगाने वाला डाक्टर अन्ततोगत्वा रोगी को अधिक दुख देने वाला साबित होता है, दृढ़ हाथों से कसकर नश्तर लगाने वाला डाक्टर आरम्भ में भले ही दुख देने वाला जान पड़े लेकिन अंत में उसकी क्रिया से सुख ही मिलता है।

मलीनता में पवित्रता नहीं होती, मलीनता अज्ञान, आलस्य की निशानी है।

जो व्यक्ति जेब में पड़ी बीड़ी अथवा बोतल में पड़ी शराब को पीने के बाद बीड़ी अथवा शराब को छोड़ने का विचार करता है, वह उसे कभी छोड़ ही नहीं सकता। पीने वाला जब अपने पास पड़ी हुई बीड़ी और शराब को छोड़ देता है, तभी मुक्त होता है।

मनुष्य एक बार भूल करे तो उसे क्षमा कर दिया जाता है, दोबारा करें तो उदारमना उसे क्षमा कर देते हैं, लेकिन यदि तीसरी बार भी वह भूल करें तो ? तब तो उसे वरखास्त करने के अलावा और किया ही क्या जा सकता है ?

हमें पिछली बातें भूल जानी चाहिए, हम जिस तरह उच्छिष्ट अन्न नहीं खाते हैं उसी तरह हमें बीती बात याद करके मीठा, कड़वा स्वाद नहीं लेना चाहिए। हमें केवल इतना ही अधिकार है कि वर्त्तमान को सँभाल लें। हमें भविष्य का विचार भी न करना चाहिए।

मुझे इस मान्यता में कि जो कुछ पुराना है वह सब पवित्र है, जितना दोष दिखाई देता है, उतना ही दोष इस विचार में भी दिखाई देता है कि जो कुछ पुराना है वह सब दूषित है।

असफल होने का अर्थ है–उस विषय में अधिक प्रवीण बनना।

प्रत्येक युग में आचार–व्यवहार में थोड़ा बहुत अंतर होता ही है। जैसे जाड़े के कपड़े गर्मी में निरूपयोगी हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रायः एक युग की प्रथायें दूसरे में निरूपयोगी और हानिकर हो जाती है।

गुण–दोष विशेष रूप से बाह्य कार्य की अपेक्षा आन्तरिक भाव में होता है। किसी भी कार्य की परीक्षा कर्त्ता के भाव को देखकर की जा सकती है। माता का सविकार स्पर्श पुत्र को नरकवास कराता है और उसी का निर्विकार स्पर्श उसे स्वर्ग प्रदान करवाता है। द्वेष–भाव से चलाई छुरी प्राण हर लेती है, प्रेम–भाव से लगाई छुरी प्राणदान करती है। बिल्ली के वही दाँत चूहे के लिए घातक, परंतु अपने बच्चों के लिए रक्षक होते है।

जो जानते हैं और स्वीकार करते हैं कि वे कभी–कभी झूठ बोलते है, उनके लिए हमेशा आशा रहेगी। जो यह समझते हैं कि वे कभी झूठ नहीं बोलते, उनका मार्ग कठिन है।

आपके पास खुशी के साथ कष्ट सहन करने का साहस है तो आप पत्थर से पत्थर दिल को भी पिघला सकते हैं।

श्रम करना प्रभु की आराधना करना है, जो श्रम किए बिना खाता है वह पाप खाता है वह सचमुच चोर है।

काहिली हमारा महारोग है। हमारी कंगाली उसका लक्षण है।

जिसकी सदा ही प्रशंसा की जाती हो या जिसकी सदा ही निन्दा की जाती हो, ऐसा व्यक्ति न कभी हुआ है और न होगा।

दूसरों को अपमानित करके लोग अपने को सम्मानित कैसे समझ पाते हैं, यह बात मैं आजतक नहीं समझ सका हूँ।

धर्म–संकट और दुख की सीमा ही नहीं है, इन्हीं में से सच्ची जिज्ञासा पैदा होती है।

आप अपने अंदर तीन गुण विकसित करें–

(1) मर्यादा, (2) संयम, (3) चरित्रबल

संसार का ऐसा नियम है कि एक वातावरण में किसी स्थान पर यदि कोई शुभ कार्य हो रहा हो तो आस–पास के स्थानों पर छूत लगे बिना नहीं रह सकती।

पाखण्ड और झूठी बदनामी का मुकाबला उसकी उपेक्षा करके करना होगा।

मेरा ख्याल है कि दुष्ट मनुष्य को तो हम क्षमा करें मगर उसकी दुष्टता को धिक्कारने में जरा भी रियायत न करें। अगर हमने किसी चीज को बुरा मान लिया है तो तब तक हमारा ख्याल कायम रहे, जब तक उस बुरी बात की साफ–साफ शब्दों में निन्दा करना सौभ्य स्वभाव से असंगत नहीं है और आगे चलकर हमें मालूम हो कि हमारा ख्याल गलत था, तो उसपर अफसोस करने का कोई कारण नहीं। क्योंकि पूर्ण सत्य के पास पहुँचने की कोशिश में हमें समय–समय पर सापेक्ष सत्य से काम चलाना पड़ेगा।

मेरे साथ रहने वाले सब लोग मेरे जैसे ही होने चाहिए, ऐसा बिल्कुल नहीं है, वह इष्ट भी नहीं है। यह तो केवल नकल करने जैसा हुआ।

जिस तरह मैल में हाथ डालें तो हाथ मैले होते हैं, उसी तरह झूठ बोले तो मन मैला होता है।

केवल संस्कार के कारण कोई उन्नति नहीं कर सकता, पुरूषार्थ के बिना उन्नति असंभव है।

जो आलस्यवश लिखते–पढ़ते नहीं वे अवश्य मूढ़ माने जायेंगे लेकिन जो व्यर्थ ही पढ़ते रहते हैं और विचार नहीं करते वे भी लगभग मूर्ख ही रहते हैं। बिना विचार का वाचन भी एक प्रकार का रोग है।

जिन्हें पढ़ने की आदत होती है, यदि उन्हें पढ़ने के लिए नहीं मिले तो विक्षिप्त हो उठते हैं। लेकिन यदि उन्हें विचार करने की टेव हो तो उनके पास विचार पोथी हर समय रहती है।

जिसको हम दुराचारी समझते है उसकी घृणा तो दिल में नहीं होनी चाहिए। परंतु ऐसे लोगों से वगैर कारण परिचय भी नहीं करना चाहिए।

शुभ प्रयत्न कभी बेकार नहीं जाते और मनुष्य की सफलता तो उसके शुभ प्रयत्न में ही है। परिणामों का मालिक तो सिर्फ ईश्वर ही है।

जिस मनुष्य के मन में कभी कोई प्रश्न ही नहीं उठता वह उन्नति कैसे कर सकता है ?

जिस ज्ञान में नम्रता नहीं, कोमलता नहीं, उस ज्ञान का क्या उपयोग ?

जो काम हमारा नहीं उस कार्य के विषय में तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिस काम को तुम रोक नहीं सकते उसके लिए शोक करना उचित नहीं है।

नैतिकता का तकाजा यह है कि जहाँ–जहाँ शंका हो वहाँ–वहाँ उसका निर्णय हमें अपने स्वार्थ के विरूद्ध करना चाहिए।

1. सर्वोत्तम विद्या – आत्मज्ञान
2. यौवन का मूल्य – ब्रह्मचर्य
3. राष्ट्र की संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ लक्षण – सत्यनिष्ठा
4. जीवन की सार्थकता – अपने को जानने में
5. जीवन का श्रेष्ठ आदर्श – सत्यागह
6. स्त्री का सर्वाधिक प्रंशसनीय गुण – पवित्रता
7. पुरुष का सर्वाधिक प्रंशसनीय गुण – पवित्रता
8. मेरी प्रिय पुस्तक – गीता जी
9. सबसे ज्यादा प्रिय – सत्य

कायर बहुत बार बिना मौत ही मरते हैं। रोग के भय से जितने आदमी मरते हैं, खुद रोग से उतने नहीं मरते।

ज्योंहिं किसी व्यक्ति की मंशा में संदेह पैदा हो जाता है, उसका किया हर काम दोषमय दिखाई देने लगता है।

जो व्यवहारिकता जगत के कल्याण के विरूद्ध हो, वह सर्वथा त्याज्य है। जो सबको समान समझना जानता है वह जीतता है।

1. बंधनयुक्त कौन है? – जो 'मैं' में विश्वास रखता है।
2. मुक्ति क्या हैं ? राग–द्वेष आदि से मुक्त होना
3. नरक से अभिप्राय क्या है ? असत्य
4. मुक्ति प्राप्त करने के लिए कौन सी वस्तु है –अहिंसा
5. मुक्त दशा कौन सी है – राग–द्वेषादि का सर्वथा अभाव
6. नरक का मुख्य द्वार कौन सा है ? असत्य आचरण

जो छोटे–छोटे नियमों का पालन करना सीख जाता है उसमें बड़े–बड़े संकल्पों के पालन की शक्ति सहज ही आ जाती है।

हम बड़ों के बल का अनुकरण करें उसकी कमजोरी का कभी नहीं। बड़ों की लाल आँखों में प्रेम देखे, उनके लाड़ से दूर भागें।

जिसे शुद्ध ज्ञान है उसे धोखा देना असंभव है। कोई मनुष्य धार्मिक और नीतिवान हो किन्तु ज्ञानी नहीं हो। मोक्ष के लिए नीति और अनुभव–ज्ञान का सुसंगम होना चाहिए। जिसे अनुभव ज्ञान है उसके आगे पाखंड टिक ही नहीं सकता। सत्य के निकट असत्य नहीं टिक सकता। अहिंसा के सान्निध्य में हिंसा बंद हो जाती है। जहाँ सरलता उद्भासित होती है, वहाँ छलरूपी अंधकार नष्ट हो जाता है। ज्ञानवान और धर्मवान कपटी को देखकर तुरंत पहचान लेता है और उसका हृदय दया से भर जाता है। जिसने आत्मा को प्रत्यक्ष देखा है वह दूसरों को पहचाने बिना कैसे रह सकता है।

दुर्भाग्यवश पाखंड को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। किन्तु सदगुण को इस भय से दबाना नहीं चाहिए कि बहुत से लोग सदगुणी होने का स्वाँग करेंगे।

अच्छाई के नाम पर कभी—कभी बुराई भी जाती है इसलिए अच्छा काम छोड़ा तो नहीं जा सकता।

'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात' का भावार्थ यह है कि सत्य को सदा अहिंसामय होना चाहिए। आलोचना करने की अहिंसक भाषा सीखनी चाहिए। मधुर भाषा क्रोधमुक्त हुए बिना नहीं आती।

'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात सत्यमप्रियम का अर्थ है मनुष्य को सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए, अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए। भावार्थ यह है कि सत्य को सदा अहिंसामय होना चाहिए। आलोचना करने की अहिंसक भाषा सीखनी चाहिए।

सुख—दुख मन की तरंगे हैं। दुख को दुख मानना ही नहीं चाहिए। भगवान का विस्मरण ही दुख है।

चाहे जितना होशियार आदमी चरित्रहीन हो तो उसकी गंदगी के छींटे सार्वजनिक जीवन पर तो पड़ते ही है।

जन साधारण से प्रेम के बिना कोई भी ध्येय एक बेजान चीज हैं।

नया वर्ष तुम्हारे लिए सुखमय हो—यानि अपने अंदर से जितना सुख प्राप्त कर सको उतना सुखमय हो। क्योंकि जहाँ तक मैं देख सकता हूँ बाहर कहीं सुख नहीं है।

जैसे—जैसे अनुभव लेता हूँ, पाता हूँ कि आदमी अपने आप अपने सुख—दुख का कारण है।

शुद्ध हृदय से निकला हुआ वचन कभी निष्फल नहीं होता। सच्चा कार्य कभी निकम्मा नहीं होता, सच्चा वचन अंत में कभी अप्रिय नहीं होता।

कोई भी काम करके जब मनुष्य दुख मानता है तो समझना कि वह ज्ञान पूर्वक नहीं करता बल्कि मजबूरन करता हैं।

अफवाह सुनना नहीं और सुनना तो मानना नहीं। झूठ आत्मा को खा जाता है और सत्य आत्मा को पुष्ट करता है।

जहाँ भलाई नहीं वहाँ इन्द्र का सिंहासन भी निरर्थक समझना चाहिए।

जीने के मजें जीने की जंजाल छोड़ने में है। भोग को मनुष्य नहीं भुगतता बल्कि भोग मनुष्य को भुगतता है अर्थात खा जाता है।

जो मनुष्य शरम का कारण विवेक बताता है, वह सचमुच अविवेक का प्रदर्शन करता है।

अकेलेपन का लाभ हैं, वह अनुभव से सिद्ध होता है।

अपने को धोखा देने की मनुष्य की शक्ति अजीब है।

लोगों की निंदा से जो डरता है, वह महत्व का काम नहीं कर सकेगा।

कैसी दुख की बात है कि मनुष्य जानता है तो भी गिरना पंसद करता है।

कोई भी संकट प्रेमाग्नि से दूर होता है।

निराशा आदमी को खा जाती है।

घमंडी को प्रकाश मिल ही नहीं सकता।

सिवा विरोध के कोई आगे नहीं बढ़ता है।

जो जीवन सेवा में व्यतीत होता है वही फलदायी है।

खूबी की बात है कि हम बाहर की बात के बारे में बड़ा परिश्रम करते हैं, अंतर के लिए कुछ ख्याल तक नहीं।

जो आदमी अपना फर्ज अदा करने जाता है वह केवल यही उम्मीद रखता है कि भगवान उसे अपना फर्ज अदा करने की ताकत देगा।

जो लोग निष्पाप हैं उन्हें और अधिक पवित्र बनना चाहिए जो पापी है, उन्हें अपने पाप धो डालने चाहिए।

दुनिया से हम जैसा बरताव की उम्मीद करते हैं वैसा ही बरताव हमें खुद छोटे से छोटे आदमी के साथ भी करनी चाहिए।

विचार दो प्रकार के होते हैं—निरर्थक और सार्थक। निरर्थक विचार किसी के दिमाग में करोड़ों हो सकते हैं, मगर उसका कोई

महत्व नहीं होता। लेकिन एक ही शुद्ध सार्थक और अन्तर्मन की गहराई से निकला हुआ तथा व्यक्ति के समग्र अस्तित्व की एकाग्र प्रेरणा से उत्पन्न विचार गतिशील होकर बीजयुक्त अंडाणु की तरह नई शक्ति उत्पन्न करने का काम करता है।

किसी भी कार्य को करने के पीछे मंशा ही उस कार्य का मापदंड है।

ईश्वर के अलावा और किसी से मत डरो और अपने पड़ोसी को अपने जितना प्यार करो, यही मेरे जीवन का सिद्धांत है।

सारे धर्म नीतियों पर टिके हुए है। हम किसी धर्म को माने या न माने किन्तु नीति का पालन करना मानव का फर्ज है। नीति हीन व्यक्ति लोक या परलोक में किसी दूसरे का भला नहीं कर सकते।

जिससे हम अच्छे विचारों में प्रवृत हो सकते हैं हमारी नैतिकता का परिणाम माना जाएगा। नीतिमार्ग हमें यह बतलाती है दुनिया कैसी होनी चाहिए। यदि हमें पूर्ण बनना है तो हमें आज से ही हर तरह के कष्ट उठाकर नीति का पालन करना चाहिए।

कुछ लोग कहते है—धर्म और नीति में कोई संबंध नहीं। किन्तु नीति के बिना धर्म टिक नहीं सकता जो लोग अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि नीति के लिए ही नियम का पालन करते हैं, उन्हें ही धार्मिक कहा जा सकता है। हम कितनी ही भलाई क्यों न करे हमें उसका गुमान नहीं करना चाहिए बल्कि निरंतर यह इच्छा करते रहना चाहिए कि हम और अधिक अच्छे बने और अधिक भलाई करें।

मत बदलते हैं, परंतु नीति नहीं, नीति का वास हमारे हृदय में है। यदि कोई शैतान इस दुनिया में द्वेष और झूठ की दुहाई फिरवा दे तो भी न्याय और सत्य तो ईश्वरीय ही रहेंगे।

जो मनुष्य खुदा का काम करता है, वह खुदाई पुरुष है। जो मनुष्य स्वयं शुद्ध है, द्वेष रहित है, किसी से गलत लाभ नहीं उठाता, हमेशा मन से पवित्र व्यवहार करता है, वही मनुष्य धार्मिक है, वही सुखी है और वही धनवान है।

पहले मैं अपने प्रिय के लिए श्री, यश, आयु, विद्या की प्रार्थना करता था कि अब उसकी नैतिकता बनी रहे।

हे खुदा! नीति को छोड़कर मुझे किसी और दूसरे खुदा की आवश्यकता नहीं है। नीतिरूप नींव टूट जाए तो धर्म रूपी महल धाराशायी हो जाएगी।

सभी धर्मों में नीति का स्थान तो है ही लेकिन धर्म की बात छोड़ दें और सामान्य बुद्धि से सोचें तो नीति का आचरण आवश्यक है, उसमें सुख है।

सभी धर्म सच्चे और समान हैं क्योंकि नीति से अलग कोई धर्म हो ही नहीं सकता।

सत्वगुणी व्यक्ति शांत, स्थिर बुद्धि और विचारवान होता है वह दुनिया के प्रपंच में नहीं पड़ता और अपना मन हमेशा ईश्वर की ओर उन्मुख रखता है।

मेरे विचार से हृदय को पवित्र करने का प्रयत्न करना ही हृदय का पवित्र हो जाना है।

साधारण सदगुणों के अभ्यास से ही उच्चतर जीवन उपलब्ध होता है और अगर हम यह उच्चतर जीवन प्राप्त नहीं करते तो हमारा पूजा—पाठ करना व्यर्थ है।

जिसने आदर करना नहीं, सीखा उसे आदर नहीं मिलता। जिस भाषा में वीरता, सच्चाई और दया के लक्षण नहीं होते उस भाषा को बोलने वाली जातियों में वीर सत्यशील और दयालु लोग नहीं होते।

तुम्हें किसी के विरूद्ध उस वक्त जाना उचित है, जब वे स्पष्ट रूप से तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक बने।

हम भविष्य के संबंध में योजना बनाएँ किन्तु उसे जानने की कोशिश न करें।

स्वयं गांधी

बिना समझे लोग मेरी पूजा करें, यह तो केवल परेशानी की बात है। मैं जैसा हूँ, वैसा ही लोग मुझे जाने और फिर भी मेरा आदर करें तो मैं उनका उपयोग लोक सेवा में कर सकता हूँ । मैं अपने धार्मिक विश्वासों को दबाकर किसी भी प्रकार का सम्मान नहीं चाहता। सदाचरण करते हुए मेरा सर्वथा तिरस्कार हो तो उसका भी मैं स्वागत करूँगा। हम हजारों वस्तुओं की इच्छा करते हैं परंतु इन सबको प्राप्त नहीं कर सकते। यह समझकर हमें अपना मन पूर्णतः शांत रखना चाहिए।

मुझै स्वप्नदर्शी लोग पसंद है।

ऊपर से सोचने पर लौकिक दृष्टि से मैंने तुम्हारा अहित किया है—किन्तु मैं अब भी कहता हूँ, तुम भाईयों की जैसी सेवा मैंने की है वैसी दूसरा पिता नहीं करता। मैंने तुम्हें अपने धार्मिक अनुभवों का हिस्सेदार बनाया है। इससे अधिक कोई क्या दे सकता है ?

मैं यह चाहता हूँ कि यदि मेरी मृत्यु हो तो हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करने के प्रयत्न में ही हो। मुझे अपने जीवन में दो काम करने की अति प्रबल इच्छा है—इन दोनों में एकता और सत्याग्रह।

मेरे लेखों में द्वेष नहीं हो सकता, क्रोध नहीं हो सकता, क्योंकि मेरा विशिष्ट धार्मिक विश्वास है कि हम शासको के प्रति या किसी के प्रति द्वेष बढ़ाकर सच्ची हित साधना नहीं कर सकते, क्योंकि मेरा अटल विश्वास है कि सत्य के सिवा और कोई धर्म है ही नहीं।

(1907 में)—कुछ लोग मेरी जान लेने के अवसर में हैं। यदि ऐसा होता है तो भी संतोष की बात होगी कि मैं जिस बात को कल्याणकारी

मानता हूँ, यदि उसके लिए जान देनी पड़े तो उससे अच्छी मौत कौन हो सकती है ? आज मेरे विचार जिस पथ पर बढ़ रहे हैं, यदि इसपर आरूढ़ होकर अभी मैं शरीर छोड़ूँ तो अगले जन्म में सद्य मोक्ष मिल जाएगा।

मेरा दावा है कि मैंने अपने साथियों के रूप में अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों को ही चुना है। मतलब यह है कि उनमें मुझसे श्रेष्ठ होने की संभावनाएँ है। मैं तो अब बहुत ही कम प्रगति कर सकता हूँ, जबकि उनकी प्रगति की संभवानाएँ असीम है। उनका आदर्श मेरा चरित्र है और अपने आदर्श के प्रति उस मन में प्रबल उत्साह है।

श्रीकृष्ण के रूप में मुझे दिखाना, भगवान का अपमान करना है। मैं अपने को उन अनेक कार्यकर्त्ताओं में से एक तुच्छ कार्यकर्त्ता मानता हूँ, जो एक महान उद्देश्य के लिए काम कर रहे है।

मैं अपने घर को चारो ओर से दीवारों से नहीं घेरना चाहता और न खिड़कियों को बंद रखना चाहता हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि सभी देशों की संस्कृतियाँ अधिक से अधिक निर्बाध रूप से प्रवाहित हों। अलबत्ता मैं यह नहीं चाहूँगा कि उनके तेज झोंके मेरे ही पाँव उखाड़ दें। मैं किसी दूसरे के घर में एक अवांछनीय मेहमान, भिखारी या गुलाम के रूप में रहना भी बर्दास्त नहीं करूँगा। मेरा धर्म जेल की तंग कोठरी जैसा संकुचित और अनुदार नहीं है। उसमें तो भगवान की सारी सृष्टि के लिए स्थान है। लेकिन अविनय जाति, धर्म अथवा वर्णगत अहंकार के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है।

लंगोटी पहनने पर यदि सारा भारत मुझे पागल कहे तो उससे क्या ? अथवा हमारे साथी न करे तो इस बात से क्या फर्क पड़ता है ? यह काम तो मैंने साथियों के अनुकरण के लिए किया नहीं है। इसका उद्देश्य सिर्फ जनसाधारण को धीरज का रास्ता दिखाना है और अपना रास्ता साफ करना है। अगर खुद मैं लंगोटी पहनकर न रहूँ तो दूसरों से ऐसा करने के लिए कैसे कह सकता हूँ ?

मेरा रोग असाध्य है, जब–जब लोगों से भूल होगी तब–तब उसे कबूल किए बिना मुझसे रहा नहीं जाएगा। मैं इस दुनिया में अगर किसी जालिम के आगे सिर झुकाता हूँ तो वह है मेरे "अन्तस्तल की शांत सूक्ष्म आवाज।" यदि मेरे साथ देने वालो ंकी संख्या घटते–घटते न्यून हो जाए और मेरे अकेले पड़ जाने की नौबत आ जाए तो भी मेरा विनम्र विश्वास है कि मुझमें उस समय भी खड़े रह सकने का साहस है।

मेरा अनुयायी सिर्फ एक है और वह खुद मैं हूँ। इस एक अनुयायी की बात ही क्या है ? मेरा यह अनुयायी ऐसे खेल रचा करता है कि कभी–कभी मैं घबड़ा जाता हूँ। परंतु मेरे सिद्धांत इतने उदार है कि मैं उसपर दया करके उसकी भूलों को दरगुजर का देता हूँ तथा उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता हूँ ।

मुझे इस बात पर विश्वास है कि मेरे प्रति जो आपका प्रेम है उसका कारण इसके सिवाय और कुछ नहीं है कि मैंने दीन–दुखियों के साथ तादात्म्य कर लिया है। आप मुझे महात्मा मानते हैं, इसका कारण न तो मेरा सत्य है न मेरी अहिंसावृति, बल्कि इसका कारण दीन–दुखियों के प्रति मेरा अगाध प्रेम है। चाहे जो कुछ हो जाए पर मैं फटेहाल नर कंकालों को नहीं भूल सकता।

मेरा निजी जीवन सार्वजनिक हो गया है। दुनिया में मेरे लिए एक भी ऐसी बात नहीं है जिसे में निजी कर रखूँ। मेरे प्रयोग आध्यात्मिक है। इन प्रयोगों का आधार बहुत कुछ आत्म–निरीक्षण है। मैंने 'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डें' की उक्ति के अनुसार प्रयोग किए हैं। इसके पीछे मेरी यह मान्यता है कि जो बात मेरे विषय में संभव है वह दूसरों के विषय में भी संभव होगी।

मैंने बहुत से अवसरों पर अपने को परखकर यह जानने की कोशिश की है कि क्या मेरे लिए अपने उत्पीड़क के प्रति घृणा करना–मैं प्रेम करना नहीं कर रहा हूँ–संभव है? मुझे अत्यन्त ईमानदारी के साथ किन्तु पूरी नम्रता के साथ यह कहना होगा कि मुझे इसमें सफलता नहीं मिली। मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं जबकि किसी भी व्यक्ति के प्रति घृणा का अनुभव हुआ है। मैं ऐसा कैसे बना, मैं नहीं जानता। मैंने तो जीवन भर जैसा आचरण किया है वही आपको बता रहा हूँ।

मैंने जीवन में कभी भी यह पाप नहीं किया है कि जो बात हृदय से न चाहूँ, वह मुँह से कहूँ। मेरा स्वाभाव तो सीधे हृदय के द्वार में प्रवेश करना है। यदि तत्काल असफल भी हो जाता हूँ तो मैं जानता हूँ अंततः लोग सत्य को सुनेगे।

इतना मुझे मालूम है कि मैं सत्य और अहिंसा के बिना जी नहीं सकता।

जो लोग अपने को मेरा दुश्मन मानते हैं उनके प्रति भी मेरे मन में प्रेम है। फिर भी मैं उनकी गलतियों की और से अपनी आँख बंद नहीं कर सकता।

मैं सत्य का शोधक हूँ। मैं अपने प्रयोगों को सर्वोत्तम तैयारी के साथ किए गए हिमालय–आरोहण अभियान से कहीं अधिक महत्व देता हूँ। इसलिए मैं अपने ही मार्ग पर चलना चाहता हूँ। जिस दिन मैं अपने सूक्षम अर्न्तनाद को सुनना बंद कर दूँगा–उसी दिन मेरी उपयोगिता समाप्त हो जाएगी..... ईश्वर की इच्छा जैसी मुझे प्रतीत होती है, के अनुसार ही काम कर सकना भर मेरे हाथ में है। फल देना तो उसी के हाथ में है।

संभव है कि मैं कभी संत हो सकूँ, लेकिन अभी मुझे संत बताना कुछ जल्दबाजी करना है। मैं संत हूँ ऐसा तो मुझे अपने आप किसी प्रकार मालूम नहीं होता। मगर मुझे लगता है कि अनजाने में हुई तमाम गलतियों के बावजूद मैं सत्य का सेवक अवश्य हूँ। चूँकि सत्य ही सबसे बड़ी नीति–चतुराई के अनुकूल मालूम पड़ते है। मगर मुझे आशा है कि सत्य और अहिंसा की नीति के सिवा मुझमें और कोई

नीति चातुर्य नहीं है। स्वदेश और स्वधर्म के उद्धार के लिए भी सत्य और अहिंसा को छोड़ नहीं सकता।

न मैं संत हूँ न राजनीतिज्ञ हूँ, मैं तो केवल सत्य के पथ का एक नम्र अन्वेषक हूँ और मैं जीवन के भक्त पहलुओं में से कुछ पहलुओं पर प्रयोग कर रहा हूँ। यदि मैं राजनीति में भाग लेता हुआ जान पड़ता हूँ तो इसका कारण यही है कि आज राजनीति को चारों और से साँप के गुंजल की तरह जकड़ रखा है। चूँकि मैं बिल्कुल ही स्वार्थ की दृष्टि से अपने चारो और गर्जन करते हुए तूफान में शांति के साथ रहना चाहता हूँ।

लोग मुझे सनकी, झक्की और दीवाना कहते हैं। सचमुच ही मैं इस कीर्ति के योग्य हूँ। क्योंकि जहाँ कहीं जाता हूँ अपने आस–पास सनकियों, झक्कियों और पागलों को इकट्ठा कर लेता हूँ।

मैं महात्मा कहलाता हूँ। इस कारण कोई यह मानकर न चले कि मेरी सब बातें सच ही होती है। हम नहीं जानते कि महात्मा क्या है, कौन है ? सच्ची बात तो यह है कि महात्मा शब्द को भी बुद्धि की कसौटी पर चढ़कर देखना चाहिए। अगर पूरा न उतरे तो उसका त्याग कर देना चाहिए ।

मैं तो अंग्रेजी, पारसी या मुसलमान किसी का सपने में भी बुरा नहीं चाहता। मैं तो सबका भला ही चाहने वाला हूँ। इसलिए अंग्रेज सरकार हमारा क्या कर सकती है ? कुछ करने की हिम्मत ही नहीं होती, हिम्मत होगी तो पकड़ेगी। और मुझे पकड़ ले तो भी जेल में पड़ा–पड़ा मैं यही प्रार्थना करूँगा कि हे ईश्वर इस सरकार का तू हृदय–परिवर्तन कर और इसके हृदय में मनुष्य को शोभा न देने वाली जो भावना पैदा हुआ है, उसे दूर कर।

यद्यपि मेरा ध्येय बाहर से राजनीतिक लगता है पर मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहूँगा कि इसकी जड़े–आध्यात्मिक है। मैं अपनी राजनीति को नैतिकता, आध्यात्मिकता और धर्म से विच्छिन्न न होने

का दावा करता हूँ। मेरा यह दावा रहा है और यह दावा व्यापक अनुभव पर आधारित है कि जो आदमी ईश्वर की इच्छा को जानने और उसका अनुसरण करने की कोशिश कर रहा है वह जीवन के किसी भी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ सकता। अपने सेवा कार्य के दौरान मैं इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा हूँ कि यदि जीवन में कोई ऐसा क्षेत्र है जहाँ नैतिकता, सत्य, ईश्वर का भय आवश्यक नहीं है, तो वह क्षेत्र बिल्कुल छोड़ देना चाहिए।

मेरे विरोधी पहले थे और आज भी हैं लेकिन मुझे उनके प्रति कोई रोष नहीं है। स्पप्न में भी मैंने उनका बुरा नहीं चाहा है। फलस्वरूप अनेक विरोधी मित्र बन गए हैं। किसी भी व्यक्ति के विरोध का आज तक मुझपर कोई असर नहीं हुआ। तीन बार तो मेरी जानतक पर बन आई। तथापि मैं आज भी जीवित हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि विरोधी को कभी सफलता नहीं मिलेगी। सफलता मिले अथवा नहीं इससे मुझे कोई ताल्लुक नहीं। मेरा धर्म तो उनके भी हित की कामना करना है और अवसर आने पर मैंने यथाशक्ति अमल किया है और मेरी मान्यता है कि यह मेरे स्वाभाव की विशेषता है।

लाखों लोग मेरी पूजा करते हैं और मैं इससे ऊब उठता हूँ। उनकी इस पूजा में किसी दिन भी खुशी नहीं हुई और न मुझे ऐसा लगता है कि मैं इन सब के योग्य हूँ। हाँ मुझे अपनी अयोग्यता का निंरंतर आभास होता रहा है। मेरे मन में कभी सम्मान की भूख रही हो याद नहीं पड़ती है।

कहा जा सकता है मेरे जीवन में बुद्धि का योग बहुत कम रहा है। मैं अपने को मंदबुद्धि मानता हूँ। श्रद्धावान को बुद्धि का योग भगवान कर देता है। यह बात मेरे संबंध में तो अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। मुझमें गुरूजनों एवं ज्ञानियों के प्रति हमेशा सम्मान और श्रद्धा का भाव रहा है और मेरी सबसे अधिक श्रद्धा सत्य के प्रति रही है, इसीलिए मेरा मार्ग हमेशा कठिन होते हुए भी सरल रहा है।

यह कहना कि मेरा जीवन हरिजनों का है, केवल अर्धसत्य है। पूर्ण सत्य है कि मेरा जीवन ईश्वर का है और इसलिए वह हरिजनों का है, इस दृष्टि से पूरी सृष्टि का है।

मेरा शरीर प्राणीमात्र के लिए है यह जितना सच है उससे ज्यादा सच है कि वह ईश्वराधीन है। वह अनशन कराए तब मैं क्या कर सकता हूँ ?

ईश्वर के अस्तित्व का भान मुझे कब हुआ, यह मैं नहीं कह सकता। ये क्रियाएँ मेरे लिए इतनी स्वाभाविक हो गई है कि ऐसा आभास होता है मानो वे हमेशा थी।

मैं किसी भी प्रकार अपने को इस लायक नहीं समझता कि मेरी तुलना बुद्ध से की जाए। मैं अपने को अत्यन्त साधारण मनुष्य मानता हूँ एक ऐसा तुच्छ कार्यकर्त्ता जो मनुष्य से हो सकने वाली कोई भी गलती कर सकता है।

अपने जीवन में मैं इतनी बार बाल–बाल बचा हूँ कि इस ताजा घटना से मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। मेरे इस पवित्र जीवन का जितना कुछ भाग अभी शेष है, उस पर जिन्हें ईष्या हो, उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि मेरे शरीर को खत्म करना तो बड़ा आसान कार्य है। मगर मेरे जीवन को जिसे वे पापपूर्ण समझते हैं, समाप्त करने के लिए बहुत से निर्दोष लोगों के जीवन को संकट में डालने की क्या जरूरत है?

अगर मुझमें अहिंसा का तत्व है तो सूर्य की तरह स्वयं प्रकाशित होना चाहिए। प्रेम से ओत–प्रोत मन को दोपहर के सूर्य के जैसा होना चाहिए। हो सकता है कि मैं अपने जीवन में ऐसी अहिंसा प्रकट करने में सफल न हो सकूँ। मैंने जो आदर्श अपने सामने रखा है उसे तनिक भी कम करने की बजाय मैं मुक्त कंठ से अपनी असफलता की घोषणा करना कहीं अधिक पसंद करूँगा।

तुम्हें जानना चाहिए कि मैं तो एक मिट्टी का पुतला ही हूँ और जिन महापुरूषों से तुम्हें विरक्ति होती है वे ही मेरे लिए पुण्य आदर्श

हैं। राम और कृष्ण नाम से मुझ में आशा का संचार हो उठता है। अतः मैं सलाह दूँगा कि तुम अपने अवतार को अथार्त मुझे टुकड़े कर दो। राम और कृष्ण की निन्दा करना तो हिन्दुत्व और धर्म पर आघात करना है। मैं एक अवतार हूँ तो मैं तो एक न एक दिन मरूँगा ही। तब क्या तुम्हारे लिए ईश्वर भी नहीं रह जाएगा। अगर राम और कृष्ण की पूजा तुम्हें नहीं भाती तब तुम हरिजनों से कह दो कि वे हिन्दू धर्म छोड़ दें। क्योंकि जो आदमी राम और कृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं मानता वह हिन्दू नहीं। मैं तो जीवन्त राम और कृष्ण की पूजा करता हूँ, जो सत्य, शिव और पूर्णता के अवतार है।

मेरी विषय वासना अपनी पत्नी तक सीमित थी और तेइस वर्ष की अवस्था में मैं केवल भोग के लिए संयोग में समाए दोषों के प्रति जागरूक हो गया था और 30 साल की उम्र में पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेने का निश्चय कर चुका था।

गाँव में सुखी हूँ या पहले, यह मैं नहीं कह सकता, क्योंकि मेरा सुख बाहरी परिस्थितियों पर अवलंबित नहीं है।

नहीं! ऐसी बात नहीं कि मैं अपना संयम कभी नहीं खोता। कभी–कभी मैं बिल्कुल संयम खो बैठता हूँ और ये प्रंसग मेरे लिए लज्जा के प्रसंग होते है। यदि उन्होंने मुझे संयम खोते नहीं देखा है तो इसका कारण है। जो लोग मुझे अपना शत्रु मानते हैं उनके साथ अपने व्यवहार में–संयम कायम रखने के लिए मैंने कठिन साधना की है। लेकिन अपने निजी जीवन में यह बात नहीं है और यह बहुत अफसोस की बात है।

मेरी आकांक्षा सीमित है। ईश्वर ने मुझे सारी दुनिया को अहिंसा की राह पर चलाने की शक्ति नहीं दी है। लेकिन मेरे मन में कुछ ऐसे ख्याल है कि अहिंसा को भारत के सामने उसके अनेक कष्टों के उपचार के रूप में पेश करने के लिए अपने एक साधन के रूप में उसने मुझे जरूर चुना है।

हम जो कुछ करते हैं उसे करने की प्रेरणा जिससे मुझे मिलती है वह चीज है विशुद्ध धार्मिक। राजनीतिक और सामाजिक कार्य उसी का विस्तार है। क्योंकि सारी मानवजाति के साथ तादात्म्य स्थापित किए बिना मैं धार्मिक जीवन जी नहीं सकता था और राजनीति में भाग लिए बिना वैसा हो नहीं सकता था।

बहुत से लोग इस भ्रम में पड़े हुए हैं कि मेरे पास सारे रोगों का उपचार है। काश ऐसा होता हालाँकि कह नहीं सकता कि ऐसा होता तो वह विशुद्ध वरदान ही साबित होगा। अगर मैं ऐसी बातों का बिना विचारे सर्वत्र प्रयोग करने लगता तो लोगों को असहाय बना देता।

संभवतः यह सातवी बार भगवान की कृपा से मैं मौत के मुँह में जाते–जाते बचा हूँ। मैंने कभी किसी व्यक्ति को चोट नहीं पहुँचायी और न मेरी किसी से शत्रुता ही रही है। मुझे कोई क्यों मारना चाहेगा? यह बात मेरी समझ में नहीं आती, किन्तु मारना चाहा। ऐसा हर देश में होता है। फिर भारत में क्यों नहीं? दुनिया है ही ऐसी। मनुष्य खतरों और मुसीबतों के बीच जीने के लिए ही पैदा होता है। मनुष्य का संपूर्ण अस्तित्व जीवन और मृत्यु की शक्तियों के बीच एक सतत् द्वन्द्व है। मेरा बल और सबल सब रामनाम है।

मैं बंगाल से पराजित होकर नहीं लौटना चाहता। यदि आवश्यकता हुई तो मैं किसी हत्यारे के हाथों मरना पसंद करूँगा।

मैं महात्मा नहीं हूँ मैं तो अल्पात्मा हूँ। मैं तो आपकी तरह ही एक साधारण प्राणी हूँ और मैं अहिंसा का आचरण करने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ। आज मैं क्रोध कर बैठा और इसलिए मैं एक पूर्ण व्यक्ति नहीं हूँ। यदि मुझ जैसा अपूर्ण व्यक्ति अहिंसा का आचरण करने का प्रयत्न कर सकता है तो आप सब लोग भी कर सकते हैं, या तो मैं इस परीक्षा में सफल होंऊँगा या मिट जाऊँगा।

अब मैं अपने आप से कहता हूँ कि अब समय आ गया है। अगर तुम अपने आपको जानना चाहते हो तो अकेले आगे बढ़ो।

मैं आधुनिक बुद्ध नहीं हूँ, मैं एक साधारण मनुष्य हूँ और ऐसा साधारण मनुष्य होने का दावा करता हूँ, जिसके पास विस्तृत अनुभव का भंडार है। लेकिन इस कारण से मैं अपने को आप में से किसी से भी श्रेष्ठ नहीं समझता। मैं तो भारत के सभी समुदायों का समान रूप से सेवक हूँ।

मुझे दुनिया के नाराज होने के भय से वह सब करना छोड़ देना चाहिए, जो मैं ठीक समझता हूँ। मैं इस विचार मात्र से ही काँप उठता हूँ कि यदि मैंने जीवन में ऐसा किया होता तो मैं कहाँ होता। मैंने अपने वर्त्तमान प्रयत्न को एक यज्ञ, एक तपस्या की संज्ञा दी है, इसका अर्थ है आत्मशुद्धि की परकाष्ठा। जब तक मेरे मन में ऐसी बात है, जिस पर मैं प्रकट रूप से अमल करने का साहस नहीं कर सकता, तब तक मैं आत्मशुद्धि कैसे कर सकता हूँ? जिस चीज को व्यक्ति अपने संपूर्ण मन, प्राण से अपना कर्त्तव्य समझता है, उसे करने के लिए क्या उसे किसी की अनुमति अथवा अनुमोदन की जरूरत है?

आप ऐसा मानते हैं कि हजारों साल बाद मैं ही एक अवतारी पुरूष पैदा हुआ। मैं स्वयं ऐसा नहीं मानता। मेरा दावा है कि जो मैं करता हूँ वह कोई भी व्यक्ति उतनी ही लगन के साथ करे तो वह भी मेरे ही जितना कर सकता है। लेकिन यदि आप जो मानते है वह सही हो तो क्या मुझे अपने में निहित स्थूल विकार भी नहीं देख सकना चाहिए?

जनवरी 1947–आप लोग मुझ अकेले को मार डालें तो मैं हँसते–हँसते राम–राम करते मरूँगा। अब तो मुश्किल से एकाध वर्ष ही जीवित रह पाऊँगा। हालाँकि तबीयत बहुत अच्छी है, लेकिन हिन्दुस्तान इस समय जिस प्रवाह में वह रहा है, उसपर काबू नहीं पा सका, तो उस हालत में एक क्षण भी जीवित नहीं रहना चाहूँगा।

अगर हमको मारना है तो मार डालो। मैं हँसते–हँसते मर जाऊँगा और दिल में कहूँगा कि भगवान उनका भला कर। उनका भला भगवान कैसे कर सकते है? उनको भला बना कर।

मेरा एक मात्र रक्षक ईश्वर है। एक तुच्छ मनुष्य जो यह भी नहीं कह सकता कि कल उसका क्या होगा किसी दूसरे की रक्षा कैसे कर सकता है ? मैं ईश्वर की देख–रेख में रहकर ही संतुष्ट हूँ। अब चाहे वह मेरी रक्षा करे या मेरा नाश। मैं जानता हूँ कि कभी–कभी वह रक्षा के निमित्त भी नाश करता है।

मुझको जिन्दा रखने वाली कोई ताकत, मैं मानता ही नहीं हूँ– सिवा एक ईश्वर के। वह जब तक चाहता है तब तक मैं जिन्दा हूँ और उस वक्त तक मेरा कोई नाश नहीं कर सकता। मुझे या किसी को जिन्दा रखना सिर्फ भगवान के हाथों में है।

कौन जाने मेरी अहिंसा की परीक्षा जीवन की इस अंतिम बेला में ही हो रही हो। एक कहावत है कि शमा की लौ बुझने से पहले एक बार खूब चमक उठती है। ऐसी बात है तो शायद मेरी मृत्यु भी सन्निकट है। मैं तो पूरी तरह तैयार हूँ। हर एक को तैयार रहना चाहिए।

24 जनवरी 1948–मैं तो राम का दास हूँ। उनकी मरजी होगी वहाँ तक उनका काम करूँगा। अपने जीवन से अगर सत्य, अहिंसा की सफलता बता सकूँ, ऐसी मौत खुदा देगा तब ही मैं कामयाब हो सकता हूँ। लोगों ने महात्मा बता दिया तो क्या ? अभी तो एक मामूली सा आदमी हूँ। हाँ अगर मैंने सत्य, अहिसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का संपूर्णपालन किया होगा और ईश्वर को बीच में साक्षी रख किया होगा तब वैसी ही मृत्यु आएगी जैसा मैं चाहता हूँ। हाँ प्रार्थना सभा में कहा भी है कि मुझ को कोई मारता हो फिर भी मैं उसकी तरफ जरा सा भी गुस्सा न करूँ और रामनाम लेते–लेते ही मरूँ।

हिमालय में जाकर दुगना महात्मा हो जाऊँगा और तब और ज्यादा आकर्षित कर सकूँगा मगर मैं मिथ्या गौरव या आराम नहीं चाहता, बल्कि वह सुख और शक्ति चाहता हूँ जो मैं अपने पास व्याप्त अंधकार और दुख तकलीफ से प्राप्त कर सकूँ।

मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उस पर क्रोध आने की बजाय स्वयं अपने पर ही अधिक क्रोध आता है, क्योंकि मैं मानता हूँ अभी मेरे अन्तर में कहीं असत्य का वास है।

मुझसे तो रहा ही नहीं जाता। भूल होने पर उसे स्वीकार किए बिना भी नहीं रहा जाता। मुझे लोगों द्वारा अस्वीकार किया जाना अच्छा लगेगा, मेरी गिनती मूर्खों में की जाए, यह तो मुझे अच्छा लगेगा, लेकिन मैं अपने शरीर में दोष का मैल रखकर आत्मा को कदापि मलिन नहीं कर सकता। राणा रूठे नगरी राखे, हर रूठे कहाँ जाऊँ, इस आशय का गीत मीरा ने गाया है या नहीं, इसकी मुझे खबर नहीं, लेकिन उसने ऐसा कर दिखाया। हम उस जगत की गाली सहन करें लेकिन ईश्वर के अपराधी न बनें उसकी चेतावनी अवश्य शिरोधार्य करें।

मेरा नाम पैगम्बरों के साथ लिया जाए, मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता, मैं तो एक विनम्र सत्य–शोधक हूँ। मैं इसी जन्म में आत्मसाक्षात्कार करने और मोक्ष प्राप्त करने के लिए अधीर हूँ। मैं अपने देश की जो सेवा कर रहा हूँ वह तो मेरी उस साधना का एक अंग है, जिसके द्वारा मैं पंचभौतिक देह धारण से अपनी आत्मा को मुक्त करना चाहता हूँ। इस दृष्टि से मेरी देश–सेवा केवल स्वार्थ–साधना समझी जा सकती है। मुझे इस नाशवान ऐहिक राज्य की कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो ईश्वरीय राज्य–मोक्ष को पाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। अपने इस ध्येय की सिद्धि के लिए मुझे गुफा में जाकर बैठने की कोई आवश्यकता नहीं। गुफा को तो मैं अपने साथ लिए फिरता हूँ। अलबत्ता इसकी प्रतीति भर हो जाए। गुफा निवासी साधक मन में महल खड़े कर सकता है, पर जनक जैसे महल में रहने वालों को ऐसे महल बनाने की जरूरत ही नहीं पड़ती। जो गुफावासी विचारों के पंखों पर बैठकर दुनिया के चारो ओर मँडराता है उसे शांति कहाँ ? परंतु जनक राजमहलों में आमोद–प्रमोदमय

जीवन व्यतीत करते हुए भी कल्पनातीत शांति प्राप्त कर सकते है। मेरे लिए तो मुक्ति का मार्ग है—अपने देश और उसके द्वारा मनुष्य जाति की सेवा के निमित्त सतत परिश्रम करना। मैं संसार के प्राणिमात्र से अपना तादात्म्य कर लेना चाहता हूँ। मैं समः शत्रौ च मित्रै च हो जाना चाहता हूँ। इसलिए यदि कोई मुसलमान हिन्दू या ईसाई मुझसे नफरत करता हो तो भी मैं उसको उसी भाव से प्रेम करना चाहता हूँ, जिस भाव से मैं अपनी पत्नी और बेटों को उनके नफरत के बावजूद भी प्रेम करता हूँ। मेरे समीप धर्मशून्य राजनीति कोई वस्तु नहीं है। राजनीति धर्म की अनुचरी है। धर्म हीन राजनीति को एक फाँसी ही समझा जाए। क्योंकि उससे आत्मा मर जाती है।

तथ्य यह है कि चिन्तन प्रवाह को रोकने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता विचार आते ही नहीं।

मर्हिष रमण और अरबिंद एकांगी है और मैं सर्वांगी, तुम्हारा इतना कहना पर्याप्त नहीं है। एकांगी जो कार्य समझता है और अमल करता है वह सच्चा। जो सर्वांगी होने का दावा करता है लेकिन सर्व में प्रयोग ही कर रहा है, वह फूटी बदाम से भी बदतर हो सकता है। मैं कहाँ हूँ यह तो भगवान ही जानता है। मैं साधक हूँ और उनके अनुयायी उन्हें सिद्ध मानते हैं, शायद हैं भी।

यदि मुझे सारा संसार कहे कि ईश्वर नहीं है, राम नहीं है तो मैं उसे झूठा कहूँगा। यदि उस भयंकर रात को मेरा पतन हो गया होता तो आज मैं सत्यागह की लड़ाइयाँ न लड़ता होता, अस्पृश्यताका मैल न धोता होता, चरखे की पवित्र ध्वनि न गुंजारता होता। आज करोड़ो स्त्रियों के दर्शन करके पावन होने का अधिकारी न मानता होता और मेरे आस—पास लाखों इस प्रकार निःशंक न बैठती मानो वे एक बालक के पास बैठी हों। मैं उसने दूर भागता होता और वे मुझसे दूर भागती होती और यह उचित भी था।

मैत्री

मित्र को यह अधिकार है कि वह इन कमजोरियों की ओर स्नेह के साथ अपने मित्र का ध्यान दिलाए। जब मैत्री मित्रों को सही मार्ग की ओर प्रवृत करे तभी वह दिव्य वस्तु बन जाती है।

मित्र की गलती करने पर उसकी गलती बताने में यदि संकोच किया जाए तो खानगी जीवन में हो या सार्वजनिक जीवन में, ऐसी मित्रता का कोई मूल्य नहीं है। गलत समझे जाने के भय के बिना और बिना चोट पहुँचाए गलती बता सकना मित्रता का एक विशेष अधिकार है।

जो मैत्री तनिक सा तनाव पड़ते ही दूर जाए और जो मित्र किसी भी अफवाह को विश्वास कर ले ऐसी मैत्री और मित्र किसी काम के नहीं ?

जैसे पेड़ के पत्ते साथ ही रहते हैं उसी तरह समान अचार—विचारवालों की बात है। यह स्वभाविक आकर्षण है साथी सहयोगी करोड़ों हो सकते हैं, मित्र एक ईश्वर है।

अधिक से अधिक स्पष्टवादिता मित्रता की पक्की कसौटी है।

स्वतंत्रता

स्वतंत्रता केवल तप और आत्मशुद्धि से प्राप्त हो सकती है दूसरों को सता कर नही।

स्वतंत्रता का इतना ही अर्थ है कि हम किसी से भी न डरकर जो हमारे दिल में हो वही कह सकें और वही कर सकें।

स्वतंत्रता पर लगाए जाने वाले कुछ प्रतिबंध व्यक्ति को नीचें गिराते हैं और कुछ ऊपर उठाते हैं। जिस प्रतिबंध को मनुष्य भय या स्वार्थ अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारण से नहीं बल्कि दूसरों की भावना का ख्याल करके अथवा स्नेह–भाव के वशीभूत होकर स्वीकार करता है, वैसा कोई प्रतिबंध पतनकारी नहीं होता।

मेरे स्वराज्य की व्याख्या के अनुसार जब तक शोषण रहेगा तब तक स्वराज्य नहीं होगा। जब तक एक वर्ग दूसरे को कुचलता रहेगा, गरीब, गरीब रहेंगे या ज्यादा गरीब होते जाएँगे, तब तक सिर्फ अंग्रेजों के चले जाने से जो स्वदेशी राज्य होगा वह स्वराज्य नहीं होगा।

जो लोग स्वतंत्रता की अपेक्षा सुरक्षा को अधिक पंसद करते हैं उन्हें जीने का कोई अधिकार नहीं है।

अपने से ज्यादा स्वतंत्र इस दुनिया मैं मैंने किसी को नहीं देखा, लेकिन अपनी स्वतंत्रता मैंने अपने को बाँधकर यानि नियम बनाकर और उनको पालन करके प्राप्त किया है।

महापुरुष

मैं यह मानने को तैयार नहीं कि राजाराम मोहन राय और लोकमान्य ने जो विचार व्यक्त किए है वे उनके दिमाग में बिना अंग्रेजी शिक्षा के आ ही नहीं सकता था, ये दोनों प्रतिभा के बड़े धनी थे। यदि दोनों का लालन–पालन स्वाभाविक तरीके से भी होता तो और बड़े–बड़े कारनामें करते। मैं तो मानता हूँ कि चैतन्य, कबीर, नानक, गुरूगोविन्द सिंह, शिवाजी और प्रताप इन लोगों से कहीं बड़े थे। वैसे मैं समझता हूँ कि इस प्रकार से तुलना करना ठीक नहीं है। ये सभी विभूतियाँ अपने–अपने ढंग से महान थीं किन्तु जनता पर उन महानुभावों का ज्यादा व्यापक प्रभाव पड़ा।

यदि हम किसी महापुरूष के प्रति अपना सम्मान और प्रेम प्रकट करना चाहते हैं तो उसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम नित्य उसका अनुकरण करें।

सन्त सच्चे भी होते हैं और नकली भी। सच्चे सन्त अपने चारों और कोई धूम–धाम नहीं चाहते। किन्तु उनके भाग्य में यह कष्टकारी स्थिति बदी ही होती है और नकली संत तो धूम–धाम के बिना रह ही नहीं सकते।

यदि हम करोड़ो लोगों की अहिंसक शक्ति से स्वराज्य प्राप्त करना चाहते है तो हमें स्थितप्रज्ञ या स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति के गुणों को विकसित करना चाहिए। यह आदर्श केवल ज्ञानियों के लिए नहीं बल्कि सभी के लिए, यहाँ तक कि अत्यन्त साधारण व्यक्ति के लिए भी है। स्थितप्रज्ञ के लक्षण क्या है ? जैसे कछुआ अपने सारे अंगों को समेटकर भीतर कर लेता है, उसी प्रकार स्थित प्रज्ञ पुरूष अपनी इन्द्रियों को विषयों से समेट लेता है। जिस मनुष्य की बुद्धि स्थिर

नहीं होती वह क्रोध, राग–द्वेष के वश हो सकता है। इसके विपरीत स्थिर बुद्धि पुरूष के उपर चाटुकारिता या गाली देने का प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह यही समझता है कि गाली देने से बोलने वाले की वाणी दूषित होती है न कि जिसे गाली दी जाती है उसकी। इसलिए स्थिर बुद्धि पुरूष कभी किसी का बुरा नहीं सोचेगा बल्कि अंतिम साँस तक अपने शत्रु के लिए प्रार्थना करेगा। क्या यह पालन करना कठिन है ?

किसी व्यक्ति के प्रति आदर व प्रेम हो तो उस आदर व प्रेम को प्रदर्शित करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम सदैव उसका अनुकरण करें।

कृतज्ञता

हमारे अग्रज हमारी तरह विचार नहीं किये तो क्या हम उनका तिरस्कार करेंगे ? उन्होंने जो काम किया उसी के फलस्वरूप आज हम ज्यादा काम करने के योग्य बन सकें हैं और यदि वे कोई भी कार्य न किए हैं तो हमें उनकी निंदा करना शोभा नहीं देता। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है।

भारत के राष्ट्र पितामह ने यदि जमीन की तैयार न की होती तो जो नौजवान सिर्फ बाते भर ही कर रहे हैं, नहीं कर पाते। उस पुरूष के बारे में आपका बोलना हमारे लिए शर्म की बात है। उनके कार्यों पर नजर डालिए। उन्होंने अपना जीवन भारत को अर्पित कर दिया। उन्होंने हमें बताया कि अंग्रेजों ने भारत का खून चूस लिया। यदि हम जवानी के जोश में एक कदम आगे बढ़ जाएँ तो दादा भाई कम पूज्य हो गए ? यदि आदर करने की हमारी आदत नष्ट हो जाए तो हम निकम्मे हो जाएँगे। हम यह मानें कि वे हमसे बड़े हैं और विश्वास करें कि उनके मुकाबले हमने भारत के लिए कुछ भी नहीं किया है।

"हमारा समाज अकृतज्ञ है" मैं ऐसा शब्द सुनता हूँ तो मेरा अन्तःकरण यह साक्षी देता है कि ये अज्ञानवश और उतावली में कहे गए शब्द है। विरूद्ध बोलने वाले लोग अनेक बार सच्चे मित्र साबित होते हैं।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

मैं हिन्दू–मुस्लिम एकता की समस्या को छोड़ने का साहस नहीं करता। यह मनुष्य के हाथों से निकल गई तो इसका उपाय केवल ईश्वर के हाथों में है। जैसे द्रौपदी को उसके पतियों ने, मनुष्यों ने, देवताओं ने त्याग दिया था और उसने केवल ईश्वर से ही सहायता की प्रार्थना की थी और ईश्वर ने उसको सहायता दी थी। वैसी ही दशा मेरी है, हममें से हरएक को ऐसा ही सोचना चाहिए। हमें सर्वशक्तिमान ईश्वर से ही सहायता माँगनी चाहिए और उसी से कहना चाहिए कि उसकी सृष्टि के हम तुच्छ प्राणी अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सके हैं। हम एक दूसरे से घृणा करते हैं, हम एक दूसरे का अविश्वास करते हैं, हम एक दूसरे का गला पकड़ते है और एक दूसरे की हत्या भी कर देते हैं। हमें उसी प्रभु से हार्दिक पुकार करनी चाहिए कि वह हमारे हृदयों से इस घृणा को दूर करके उन्हें शुद्ध बनाये। हम एक दूसरे का अविश्वास करके और एक दूसरे से डरकर, उसकी इस पृथ्वी को, उसके नाम को और इस पवित्र देश को बदनाम कर रहे हैं। यद्यपि हम इसी मातृभूमि की संतान है, इसी का अन्न खाते हैं, फिर भी हमारे मनों में एक दूसरे के लिए गुंजाइश नहीं है। हमें ईश्वर से पूर्ण विनम्रता के साथ प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें समझ और ज्ञान दें।

हिन्दु और मुसलमान जानवर बन जाते हैं पर उन्हें याद रखना चाहिए कि वे झुकी हुई कमर वाले जानवर नहीं है सीधी कमर वाले मनुष्य हैं। इसलिए घोर विपत्तियों में उन्हें धर्म और श्रद्धा नहीं छोड़नी चाहिए।

उत्साह

तुम्हारे उत्साह को दूसरे तुरंत ग्रहण करेंगे किन्तु एक ही शर्त्त है कि इस उत्साह में उद्धतपन न होना चाहिए बल्कि आत्म–स्थिरता होनी चाहिए। वह उत्साह सच्चा होना चाहिए, कोरी डींग नहीं।

आशावादी होने के कारण जहाँ घोर अंधकार दिखाई दे रहा है वहाँ भी उजाला ही देख रहा हूँ यह मेरी ज्यादती है।

आनंद मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है यह तो उस वस्तु तक पहुँचने का एक साधन है जो मेरे पथ को प्रकाश स्तंभ की भाँति आलोकित करता रहा है।

यदि आप अपने तन, मन और आत्मा को समर्पित कर देते हैं और अपने को संसार को दे देते हैं तो मैं कहता हूँ कि दुनिया के खजाने आपके चरणों में होंगे। आपके आनन्द के लिए नहीं बल्कि सेवा के आनन्द के लिए।

जो लोग अपेक्षा के अनुरूप नहीं निकलते तो मैं निराश नहीं होता क्योंकि उसमें किसी का दोष नहीं होता। मेरा भी नहीं होता। मुझे जो अच्छा लगा वह मैंने दिया और तुम सबको जो अच्छा लगा वह तुमने लिया। यहाँ सब अपूर्ण है वैसे ऐसा ही होता है। लाखों निराशाओं में अमर आशा छिपी रहती है।

मुझे निराशा जैसी वस्तु का तो पता ही नहीं। हाँ कभी–कभी मैं अपने प्रति अधीर अवश्य हो जाता हूँ और मुझे अकुलाहट भी होती

है कि मन में उठते संकल्प–विकल्पों पर मैं यथेष्ट अंकुश क्यों नहीं रख सकता।

वानप्रस्थ से गुजरते ही हमारी कसौटी शुरू हो जाती है। यह अशांति क्यों ? अगर हमने सब कुछ कृष्णर्पित कर दिया हो तो उसकी एक निशानी यह है कि हमसे हमारा आन्तरिक आनन्द कोई नहीं छीन सकता। ऐसे अर्पण में यदि अभी भी कुछ शेष रह गया हो तो जीवन के इस नए चरण में प्रवेश करते हुए हम उसको अर्पित कर दें।

आशा का सूर्य बाहर नहीं है हमारे भीतर है वहाँ उसे खोजो तो वह अवश्य मिलेगा।

मैं एक आशावादी व्यक्ति हूँ और मेरी अपनी आस्था आशा पर आधारित है। संसार आशा के सहारे चलता है, उसी प्रकार मैं भी।

कोई भी आदर्श पूर्णरूप से आचारित नहीं किया जा सकता, लेकिन आनन्द तो साधना में है, सिद्धि में नहीं। क्योंकि ज्यों–ज्यों हम अपने ध्येय की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों–त्यों अधिकाधिक मनोरम दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

व्यक्ति आनन्द के पीछ–पीछे भागता है, लेकिन आनन्द मृग मरीचिका के समान है। वह इस तथ्य को क्यों नहीं स्वीकार करता कि सच्चा सुख या आनन्द दुखों और कष्टों को सहने से ही प्राप्त है। इसलिए हिम्मत से काम लो और सनातन शरणागत वत्सल पर भरोसा रखकर अपने सारे दुख भुला दो।

आनंद के लिए धीरज के सिवाय और दूसरी दवा नहीं है।

रोना–हँसना दिल में से निकलता है। दुख मानकर रोता है, उसी दुख को सुख मानकर हँसता है। इसलिए रामनाम का सहारा चाहिए। सब उनको अर्पण करना तो आनंद ही आंनद है।

पाप

किसी भी काम को अंधविश्वास के कारण निरूद्देश्य और यांत्रिक रूप से करना गलत है।

दूसरों को पाप कर्म से विमुख करने वाले को स्वयं पापकर्म से मुक्त होना चाहिए। हिन्दू जगत गाय और गोवंश पर बहुत बड़ा अत्याचार कर रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारी गायों की वर्त्तमान दशा है। जिनका रक्त मांस सूख गया है, जिनकी चमड़ी के भीतर हड्डी का ढाँचा साफ नजर आता है जिन्हें पूरी खुराक नहीं मिलती, जिनपर मनमाना बोझ लाद दिया जाता है और जिन्हें पूँछ मरोरकर, पैने मारकर हाँका जाता है, ऐसे हजारों बैलों को जब मैं देखता हूँ तब मेरा ह्रदय रोता है और शरीर काँपने लगता है और मैं सोचता हूँ कि जब तक हम ऐसी घोर हिंसा करने से बाज नहीं आते तब तक मुसलमान भाईयों से क्या कहें।

इस पापमय संसार में ऐसा निष्पाप कौन है, जो ऊँचे शासन पर बैठकर दूसरो को देख–देखकर हँसता रहे। हमारा धर्म तो गुण को देखना और सराहना है।

पापों के लिए क्षमा का अर्थ क्या है ? और क्षमा कौन करे ? क्यों करे? ऐसी भाषा का प्रयोग होता है सही, लेकिन जो ऐसी भाषा प्रयोग करते हैं उनको शंका आती ही नहीं, क्योंकि मनुष्य क्षमा का आरोपण करके शुद्ध बन जाता है। तात्विक दृष्टि से पाप का फल भोगना ही है। जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक भोगता है वह दुबारा पाप नहीं करता है और शुद्ध हो जाता है, यही तो क्षमा है। क्षमा का अर्थ ऐसा कभी नहीं कि मनुष्य पाप करता रहे और क्षमा माँगता रहे। जिसके

पाप की क्षमा हुई है वह दुबारा पाप करता ही नहीं और करता है तो क्षमा नहीं हुई।

मेरा मत है कि किसी पाप को दुबारा न करने का संकल्प सर्वोत्तम ढंग का प्रायश्चित है।

झूठ बोलना व्यभिचार से कम बुरी बात नहीं है। लेकिन गुप्त व्यभिचारी तीन गुणा पाप करता है। क्योंकि आप फँसता है, दूसरे व्यक्ति को फँसाता है और झूठ भी बोलता है।

पाप का प्रायश्चित करने वाला हिसाब नहीं लगाता वह तो अपने दग्ध ह्रदय का समस्त सार उड़ेल देता है। आपको बता दूँ कि मेरा प्रयश्चित अभी पूरा नहीं हुआ है।

हमारा दिन–प्रतिदिन पतन होता जा रहा है। हमारा नैतिक–पतन इस सीमा तक हो गया है कि स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के समाचार हमारे लिए स्वाभाविक हो गए हैं। इसी कारण मैं भय से काँप उठता हूँ। ईश्वर ही राह दिखाएगा।

आप प्राचीन विचारों को मानते हैं उसी तरह मैं भी मानता हूँ फिर भी हमारे बीच भेद है क्योंकि आप प्राचीन वहमों को मानते हैं और मैं नहीं मानता। इतना ही नहीं बल्कि उन्हें मानना पाप गिनता हूँ।

कला एवं सौन्दर्य

सच्ची कला तो वही है जो आत्मदर्शन में सहायक हो। जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं तो देखता हूँ कि अपने आत्मदर्शन के लिए बाह्य रूपों का कोई सहारा लिए बिना भी मेरा काम चल सकता है। इसलिए मैं अपने बारे में यह दावा कर सकता हूँ कि मेरे जीवन में पर्याप्त कला है। हालाँकि जिन्हें तुम कला कृतियाँ कहते हो मेरे ईद–गिर्द न हो लेकिन ऊपर तारों से जगमगाते इस आकाश की ओर दृष्टि करता हूँ और अनन्त सौन्दर्य का वितान फैलाए तारक मंडित आकाश की ओर दृष्टि डालने पर जिस विराट दृश्य को देखता हूँ, वैसे विराट दृश्य के दर्शन मुझे किस कला–कृति में हो सकते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि जिन चीजों को सामान्यतया कला–कृतियाँ मानी जाती हैं उसे कोई महत्व नहीं देता, हाँ यह अवश्य महसूस करता हूँ कि प्रकृति के चिरंतन सौन्दर्य प्रतीकों की तुलना में ये कृतियाँ कितनी अधूरी है। मनुष्य की इन कला–कृतियों का महत्व उसी सीमा तक है जिस सीमा तक ये आत्मा के अन्तर्दर्शन में सहायक है।

मैं सत्य और सत्य के माध्यम से सौन्दर्य को देखता और प्राप्त करता हूँ। समस्त सत्य और केवल सत्य विचार ही नहीं–बल्कि सत्यपरक चित्र अथवा गीत भी अतीव सुंदर होते हैं। लोग सामान्यतया सत्य से आँखें चुराते हैं और इसीलिए वे उसमें निहित सौन्दर्य के दर्शन नहीं कर पाते। जिस दिन मनुष्य सत्य में सौन्दर्य देखने लगेगा–उसी दिन सच्ची कला का जन्म होगा।

सूर्यास्त और सूर्योदय का सौन्दर्य भी सत्यमूलक है। क्योंकि ये मुझे उस स्रष्टा की महिमा का भान कराते है, जिनका हाथ इनके

पीछे है। सृष्टि के मूल में जो सत्य है उसके बिना ये सब सुन्दर कैसे हो सकते हैं ? जब मैं सूर्यास्त की अद्भुत छटा को अथवा चन्द्रमा के सौन्दर्य को देखता हूँ तो मेरी आत्मा स्रष्टा की आराधना में प्रफुल्लित हो उठती है। मैं इन तमाम कृतियों में उसे और उसकी दया को देखने का प्रयत्न करता हूँ। किन्तु यदि सूर्यास्त और सूर्योदय मुझे उसके चिंतन की प्रेरणा न दे, तो मैं उन्हें भी अपने लिए बाधा ही मानूँगा। जो भी वस्तु आत्मा के अर्ध्वगमन में बाधक है, वह मोक्ष के मार्ग में अक्सर बाधा डालने वाले शरीर की ही तरह भ्रम है, पाश है।

वैराग्य जीवन की सबसे बड़ी कला है। वैसे मैं कहता हूँ जो सर्वोत्तम जीवन जीता है, वही सबसे बड़ा कलाकार है। क्योंकि जिस कला के पीछे उदात्त जीवन न हो तो वह कला कैसी ? कला मूल्यवान तभी है जब वह जीवन को ऊपर उठाए।

सच्ची कला कभी निरूपयोगी नहीं होती। प्रकृति की कला का कोई अंत नहीं है। कुदरत का कण–कण उपयोगी है। मोर के पंख का एक रंग भी निरूपोगी नहीं है यह हमारी त्रुटि की निशानी है कि हम उनमें से हर एक का उपयोग करना नहीं जानते। इसमें दोष कुदरत की स्वच्छंदता का नहीं है।

कला–विहीन मनुष्य पशु के समान है। पर कला कहें किसे ? कला तो कर्म सुकौशलम है जिससे करोड़ों लोगों को आनन्द न मिलता हो, वह कला नहीं स्व्छन्दता है, भोग है।

सच्ची शिक्षा

सच्ची–शिक्षा उस मनुष्य ने पाई है जिसके शरीर को ऐसी तालीम दी गई है कि वह उसके वश में रह सकता है–सौंपा हुआ कार्य सहर्ष और सरलता के साथ करता है। सच्ची–शिक्षा उस व्यक्ति ने पाई है जिसकी बुद्धि शुद्ध है, शांत है और न्यायदर्शी है। जिसका मन प्राकृतिक नियमों के ज्ञान से ओत–प्रोत है। जो नीच कर्मों से घृणा करता है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने समान समझता है।

स्वप्न हमारे मन की तरंगों की प्रतिक्रिया भी हुआ करते हैं। इतना काफी है कि हम साधुता का ध्यान निरंतर बनाए रखें।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना नहीं, बल्कि बच्चों का चरित्र गढ़ना है।

मेरा ख्याल है कि सच्ची–शिक्षा इसमें नहीं है कि आप बच्चों को अक्षरों का ज्ञान करा दें। सच्ची–शिक्षा तो बच्चों के चरित्र निर्माण में है।

भारत के ॠषि मुनियों ने कहा है कि वेद आदि सारे शास्त्र जानने पर भी यदि कोई आत्मा को न पहचान सके, सब बंधनों से मुक्त होने लायक न बन सके, तो उसका ज्ञान बेकार है। जिसने आत्मा को जान लिया उसने सबकुछ जान लिया। अक्षर ज्ञान के बिना भी आत्मज्ञान होना संभव है।

मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार शिक्षा को आजीविका का साधना समझना नीच वृति कही जाएगी। आजीविका का साधन शरीर है और पाठशाला चरित्र–निर्माण की जगह है।

शिक्षा का मुख्य हेतु चरित्र–गठन होना चाहिए। धर्म के बिना चरित्र कैसे बन सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आ सकता। हम

"इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः" होते जा रहे हैं; इसका भान हमें आगे चलकर होगा।

जो गुलामी से मुक्त होकर स्वतंत्रता पा जाता है और यदि उसे शिक्षा न मिल पाए तो वह प्रायः स्वतंत्रता का दुरूपयोग करने लगता है।

जो मुक्ति दे वही विद्या है, अजीविका के अनेक साधन है, विद्या तो तन, मन और आत्मा की उन्नति के लिए है।

कल्चर का अर्थ है संस्कारिता। एज्युकेशन का अर्थ है साहित्य–ज्ञान। साहित्य–ज्ञान शोधन है। संस्कारिता साध्य वस्तु है। साहित्य ज्ञान के बिना भी संस्कारिता आती है। जैसे कोई बालक शुद्ध संस्कारी घर में पलकर बड़ा हो तो उसमें संस्कार अपने आप उत्पन्न होंगे।

बच्चों को पढ़ाना या अनुशासन सिखाना ही हमारा ध्येय नहीं है। उन्हें चरित्रवान बनाना हमारा ध्येय है और उसी की पढ़ाई के लिए अनुशासन वगैरह है।

सच्ची शिक्षा तो वह है जिसके द्वारा हम अपने को, आत्मा को, ईश्वर को, सत्य को पहचान सके, इसके लिए किसी को भले ही साहित्य के ज्ञान की जरूरत होती है, किसी को भौतिक शास्त्र की, किसी को कला आदि की, लेकिन शिक्षा मात्र का उद्देश्य आत्मदर्शन होना चाहिए।

संयम

यह एक स्पष्ट सत्य है कि स्वीकृति की आवश्यकता विषय भोग के लिए होती है, संयम के लिए नहीं।

यह तो मुझे दृष्टिगोचर होता ही रहता है कि शरीर के सारे सुख मलिन है। हमने इस मलिनता को ही सुख मान लिया है। ऐसी ही है ईश्वर का गहन गति। किन्तु इस मोह से निकल आने में ही हमारा पुरूषार्थ है।

जब तक तुम विवाह की बात नहीं सोचते तुम स्वयंकृत पापों से मुक्त हो। तुम्हारा ये सोच तुम्हें पवित्र बनाए हुए है। तुम दुनिया के सामने मनुष्य के रूप में खड़े हो सकते हो। जिस रोज तुम शादी कर लोगे उसी दिन तुम्हारा तेज घट जाएगा। उसमें तो सुख है ही नहीं यह मुझसे जान ले।

मेरी राय में यह कहना बिल्कुल गलत है कि शुद्ध जीवन बिताने के लिए व्यक्ति का विवाह करना जरूरी है।

देह को रत्न, चिन्तामणि कहा गया है। यदि हम ईश्वरपरायण रहें तो सच ही उसे रत्न, चिन्तामणि बना सकते हैं। ईश्वर परायण बनने के लिए इसका दमन भी करना चाहिए।

तत्परता, निग्रह और संयम से अपने आपको चैतन्य रखते हुए बुद्धिमान मनुष्य अपने लिए ऐसा द्वीप बना ले जिसे कोई भी प्रलय तबाह न कर सके।

पुरानी सादगी को फिर से अपनाना होगा। सुख–सुविधाओं की समुचित सीमा का विस्तार करना ही होगा। शरीर पर आत्मा हावी हो गई है।

पूर्णायु 100 वर्ष से भी ज्यादा हो सकती है। मगर कितने ही वर्ष हो तो भी काल–चक्र अनन्त है और उसमें मनुष्य एक आयुस्य की गिनती एक बिन्दु का करोड़वा भाग भी नहीं है। इसके लिए मोह क्या और हिसाब क्या? विषयी भी दीर्धायु हो सकता है। जिनका जीवन सादा एवं विषय रहित होगा। ज्यादातर वे दीर्धजीवी होते हैं किन्तु सिर्फ दीर्घजीवी होने के लिए जो विषयों पर काबू करता है, उनके लिए तो यही कहा जाएगा कि उसने चूहे के लिए पहाड़ खोदा। विषयों को जीतना है तो आत्मा को पहचनाने के लिए।

जिस प्रकार मेरा मानना है कि सत्य और अहिंसा मुट्ठी भर लोगों के लिए नहीं है बल्कि सारे मनुष्य समाज के लिए, रोजमर्रा के व्यवहार की चीजें हैं। ठीक उसी तरह संयम थोड़े से महात्माओं के लिए नहीं बल्कि सभी मुनष्यों के लिए है।

संयम–पालन बिना स्त्री या पुरूष अपना नाश ही करेगा। इन्द्रियों पर कोई नियंत्रण नहीं होना बिना पतवार की नाव में सवार होने जैसा है।

सत्यवान को जिस साँप ने डंसा था वह स्थूल साँप नहीं बल्कि विषय–वासना रूपी साँप ही था। सावित्री ने अपने विष को और अपनी पवित्रता को प्रेम से उतारा था। सावित्री की कथा का यही रहस्य है जिसकी पवित्रता विषय–वासना को दूर कर सकती है। वह दूसरे सब दोषों को दूर कर सकती है।

दीर्घजीवी होने के खातिर ही कोई मनुष्य अपने विषयों को अंकुश में रखता है तो यह चूहे की खातिर पहाड़ खोदने जैसी बात हो गई। अगर हमें विषयों को जीतना है तो आत्मा को पहचानने के लिए। विषयों को जीतने में यदि देह की आयु दीर्घ होने के बजाय छोटी हो जाती है तो उसे छोटी होने दें। निरोगी या दीर्घायु शरीर विषय रहित होने के संयम का मामूली सा परिणाम है।

आत्म विश्वास

प्रेम अथवा अहिंसा की गति न्यारी है। इसे धाँधली, आडम्बर या ढोल–नगारों की जरूरत नहीं होती। केवल आत्मविश्वास की जरूरत होती है और आत्मविश्वास पैदा करने के लिए आत्मशुद्धि होनी चाहिए। लोग ऐसे आदमियों के वचन पर श्रद्धा रखेंगे। जिन्होंने आत्मशुद्धि की होगी और आस–पास का वातावरण अपने आप ही शुद्ध होगा।

हमें अपने अंदर मौजूद विकारों के दशानन को राम की सहायता से पराजित करना है। यदि राम पर हमारी आस्था हो और हम अपने आपको पूरी तरह उनकी कृपा पर छोड़ दें तो सफलता निश्चित है। सबसे बड़ी बात है कि आत्मविश्वास न खोना।

यह तो सच है कि माया मीठी छुरी बनकर वार करती है। अगर मुझे यह मालूम पड़ जाए कि मैं माया से घिरा हुआ हूँ तो फिर वह माया ही कहाँ रही ? अन्धा अगर देख सके तो फिर वह अन्धा ही क्यों कहा जायें ? अनेक प्रवृतियों में फँसकर उसमें निवृति के दर्शन की चेहरा में मैं कब माया का शिकार बन जाऊँगा। मैं क्या जानूँ, इसी से ईश्वर से माया से बचा लेने की प्रार्थना करता हुआ मैं शांति का अनुभव करता हूँ।

आत्मविश्वास कैसा होना चाहिए ? आत्मविश्वास रावण का सा नहीं होना चाहिए। आत्मविश्वास तो होना चाहिए विभीषण जैसा, प्रहलाद जैसा। उसके मन में यह भाव था कि हम निर्बल हैं मगर ईश्वर हमारे साथ है और इस कारण हमारी शक्ति अनन्त है।

आत्मबल मंदिर आदि स्थानों में जाने जैसे बाहरी उपचारों में बिल्कुल नहीं है। सत्य और अभय को विकसित करना है, उसका पहला पाठ कष्ट–सहन में सन्निहत है।

त्याग

त्याग जीवन का धर्म है। वह जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त है और उसका नियमन करता है। त्याग किए बिना हम न कुछ कर सकते हैं और न पा सकते हैं। सच्चा त्याग कर्म से अधिकतम आनन्द प्राप्त करने में ही है। फिर उसमें जोखिम चाहे कुछ भी हो।

हम जिस समाज के अंग हैं उसका यदि हमें उद्धार करना है तो हमें इसका मूल्य अदा करना होगा अर्थात स्वार्थ का त्याग करना होगा। समाज के लिए काम करते हुए जो कुछ प्राप्त हो उसका एक भाग ही हम अपने खातिर रख सकते है, अधिक नहीं बस यही त्याग है।

मनुष्य की प्रकृति ऐसी है कि वह अतिशय सामान्य वस्तु को कुछ नहीं समझते। जैसे जब हम बोलते हैं बिना खाए–पीए मनुष्य की एक घड़ी भी गति नहीं है तब हम हवा के संबंध में कुछ नहीं सोचते । इसी प्रकार आत्मत्याग है जिंदगी आत्मत्याग करने से निभती है फिर भी हम उस ओर ध्यान नहीं देते ।

अपने बेटे को सदा अपने पास रखना सचमुच स्वार्थ है, यदि वे अलग–अलग रहकर आत्मकल्याण कर सकते हैं तो क्यों न अलग रहें। हमारा धर्म तो सदा परमार्थ (त्याग) दिखाता है।

एक बात याद रखो कि अपने त्याग के भावनावश तुम उस हद तक मत जाना जिससे तुम्हारे मन में स्वयं अपने और अपने आस–पास के वातावरण के प्रति कटुता और निराशा पैदा हो जाए।

जब कोई मुझसे यह कहता है कि मैंने बहुत त्याग किया है तब मुझे हँसी आती है। जिस सुख–शांति और आनन्द का अनुभव मैं कर रहा हूँ वे सब कदाचित ही किसी चक्रवर्ती को मिलते हैं। उसे ऐसी

शांति मिलनी असंभव है। उसे तो राज–पाट का बोझ ही कुचल डालता है। मुझे इस बात का पूरा–पूरा अनुभव हो रहा है कि मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है।

किसी के लिए त्याग करने का अर्थ उस पर अनुग्रह करना नहीं है। प्रेम–प्रदत्त न्याय का नाम त्याग और नियम–प्रदत्त न्याय का नाम दण्ड है। प्रेमी की दी हुई वस्तु न्याय की मर्यादा से बहुत आगे जाकर भी हमेशा जितना वह देना चाहता है, उससे कम होती है। क्योंकि वह और अधिक देने के लिए उत्सुक रहता है।

जीवन को सच्चा बनाने के लिए निरंतर त्यागमय बनना चाहिए। आनन्द उसके बाद ही आता है। खुद त्याग ही आनन्द है। प्रत्येक लेना, और अधिक देने के लिए होना चाहिए। यह बात मेरे मन में अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है।

जो मनुष्य त्याग करता है और दुख मानता है उसने त्याग किया ही नहीं है। सच्चा त्याग सुखद होता है और मनुष्य को ऊँचे ले जाता है।

त्याग के बाद ही सही अर्थों में जीवन की शुरूआत होती है।

साघु–जीवन से ही आत्मशांति की प्राप्ति संभव है। यही इहलोक और परलोक दोनों का साघन है। संपूर्ण जीवन का भोग कभी धर्म नहीं बन सकता। धर्म की जड़ तो त्याग ही में है।

प्रतिज्ञा

प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना एक बड़ा अपराध है। यदि आप बिना आगा पीछा किए प्रतिज्ञा तोड़ दें तो मैं जरूर कहूँगा कि आप यमुना में जाकर डूब क्यों नहीं मरते। हरिश्चन्द्र अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिए भंगी के सेवक बनकर रहे, हम उन धर्मवीरों की संतान हैं इसे आप कैसे भूल जायेंगे।

अपनी प्रतिज्ञा भंग करके ईश्वर के प्रति पाप करने की अपेक्षा कायर और कमजोर होने का दोषी होना कहीं अच्छा है। अपने प्रति झूठा सिद्ध होने की अपेक्षा संसार की आँखों के सामने झूठा सिद्ध होना लाख गुणा अच्छा है।

जोश में आकर प्रतिज्ञा कर लेना काफी आसान है, पर उसपर कायम रहना और खासकर प्रलोभनों के बीच मुश्किल होता है। ऐसी परिस्थिति में ईश्वर ही मददगार होता है। इसलिए मैने राम–नाम का सहारा लेने की सलाह दी है। भोले–भाले लोगों के दिलों में जाने कैसे यह ख्याल बैठ गया है कि उनके संकट के घड़ी में कोई अवतार आ खड़ा हुआ है। उनके इस अंधविश्वास को दूर करना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं अवतार नहीं हूँ। एक निर्बल व्यक्ति के प्रति ऐसा भरोसा केवल भ्रम ही है। इसलिए मैं उनके सामने एक सादा और आजमूदा नुस्खा पेश किया जो आजतक कभी व्यर्थ सिद्ध नहीं हुआ है। अर्थात् हर रोज सूयोदय से पूर्व और शाम को सोने जाने के पूर्व अपनी प्रतिज्ञाएँ पूरी करने के लिए ईश्वर की सहायता माँगना। करोड़ों हिन्दू उसे राम के नाम से पहचानते है।

प्रतिज्ञा पालन में ही सब कुछ है इससे आत्मा का विकास होता है। यही इसका और हमारी सारी प्रवृतियों का रहस्य है या होना चाहिए।

परमात्मा को अपना साक्षी बनाकर जब हम किसी काम को करने के लिए तैयार होते हैं तो वही हमारी प्रतिज्ञा हो जाती है। जो उन्नत हैं, वे बिना प्रतिज्ञा भी अपना काम चला सकता है। लेकिन हमारे समान अवनत या पिछड़े हुए लोग वैसा नहीं कर सकते। हम लोगों के लिए जो जीवन में हजारों बार गिरते हैं, इस तरह की प्रतिज्ञाओं के बिना उपर चढ़ना असंभव है।

हम बहुत सी प्रतिज्ञाएँ करते हैं किन्तु उनका पालन करने का ध्यान नहीं रखते। यह उचित नहीं है। हम जो भी प्रतिज्ञा करे, हमें उसका पालन सच्चाई से करना चाहिए। चाहे हमें अपने प्राणों का त्याग करना पड़े; किन्तु हमें अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं करना चाहिए।

मेरे मन में कोई संदेह नहीं कि व्रत का जीवन में वही महत्व है, जो नौका के लिए पतवार का। व्रत जीवन का नियामक है। जिस प्रकार पतवार के बिना नौका भटक जाती है, उसी प्रकार व्रत–विहीन जीवन लक्ष्य–भ्रष्ट जीवन है। व्रत का अर्थ है–जान की बाजी लगाकर आत्मसंयम के निर्णय को निभाने का धार्मिक संकल्प।

पुस्तक

मेरी यह मान्यता है कि जिन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़ने का शौक है वे एकांत समय चाहे जैसी जगह हो आसानी से काट सकते हैं। सुख या दुख पाना, अच्छा या निकम्मा बनना, ज्यादातर स्वयं अपने मन पर निर्भर करता है।

अच्छी पुस्तक कुछ हदतक सत्संग की कमी को पूरी करती है।

हम इतनी सारी पुस्तकें पढ़ते है किन्तु जो कुछ पढ़ते है उसमें से कोई बात आचरण में नहीं लाते तो सारा पढ़ना व्यर्थ है। इसलिए ढेर की ढेर पुस्तके पढ़ने की बजाय आप थोड़ा पढ़ें और उसको अपने आचरण में लाने का प्रयत्न करें।

संसार में शास्त्र अनेक हैं। मैं उन सबके नाम गिनाना नहीं चाहता किन्तु यह मानने में कोई हानि नहीं है कि आप किसी शास्त्र के जितने अंश को अपने आचरण में उतारते हैं आपने उस शास्त्र का उतना ही रहस्य प्राप्त किया है।

एक अच्छी पुस्तक भी सदगुरू का काम दे सकती है। सच्चा सदगुरू तो भगवान हैं।

किताबों में जो कुछ लिखा हुआ मिलता है उसे वेदवाक्य नहीं माना जा सकता। जो नीति विरूप है अमानुषिक है, ऐसी बात चाहे किसी भी पुस्तक में हो, हमें स्वीकार नहीं करनी चाहिए।

बहुत सी पुस्तको में हम यह पढ़ते है कि धार्मिक ग्रंथ पढ़ने से पुण्य होता है। यह उत्साह–बर्द्धक वचन है किन्तु इसके शाब्दिक अर्थों के अनुसार चले तो हमें कोई लाभ नहीं होगा बल्कि हम जो पढ़ें उसपर बार–बार विचार करना चाहिए तथा यह देखना चाहिए कि हम इन्हें जीवन में कैसे उतार सकें।

आज का इतिहास मार–धाड़ विश्वासघात और झगड़ा फसाद की शिक्षा देता है। जबकि इतिहास में मानव समाज के शुभ कर्मो की गाथा को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए।

भारत

मैं अब भोग भूमि से कर्मभूमि में जा रहा हूँ। मेरी मुक्ति भारत को छोड़कर अन्यभूमि में नहीं है। यदि मोक्ष की इच्छा है तो मनुष्य को भारत भूमि जाना ही चाहिए। मेरी तरह भारत भूमि दुखियों का विश्राम–स्थल है।

हमने भारत को जो पुण्यभूमि है, धर्म का गलत अर्थ लगाकर या धर्म को पूर्ण छोड़कर अधर्म–भूमि बना दिया है। लोगों ने इधर–उधर भागना तो सीखा है, परंतु वे अपने मन की वृति नहीं बदलतें। वे अधर्ममय आचरण करते ही रहते है और अपने इर्द–गिर्द स्वच्छता बनाए रखने आदि के नियमों तक को नहीं सीखते। उन्हें जो भी अंधविश्वास पूर्ण उपाय बता दिया जाता है बस वही करने को तत्पर रहते हैं।

आज भारत दरिद्रावस्था में है यह कहते हुए मेरी आँखों में पानी भर आता है और गला सूख रहा है। मुझे तो धर्म प्यारा है किन्तु दुख है हम ईश्वर से विमुख होते जा रहे हैं।

मेरे मन में यह देववाणी समा गई है कि भारत ही कर्मभूमि है शेष सब भोग–भूमि है। भारत में धार्मिक साम्राज्य भोगने की शक्ति है। यदि हिन्दुस्तान मुक्त होना चाहता है तो उसके पास ईश्वरीय सहायता के सिवा और कोई चारा नहीं है और ईश्वर तो सत्य सिर्फ सत्य का और शांति का साथी है।

ईश्वर ने मुझे भारतवर्ष के लोगों के बीच जन्म दिया है। इसलिए मैं उनकी सेवा में गफलत करूँ तो मैं अपने सिरजनहार का अपराधी

बनूँगा। यदि मैं उनकी सेवा करना नहीं जानता तो मुझे मानव जाति की सेवा करना कभी नहीं आएगा और जब तक मैं अपने देश की सेवा करता हुआ किसी दूसरे राष्ट्र को नुकसान नहीं पहुँचाता तब तक मैं पथभ्रष्ट नहीं ही सकता।

भारत वर्ष के बारे में मेरी ऐसी धारणा है संभव है कि वह मेरा मोह ही हो–कि भारतवर्ष में किसी आदमी का एकाएक नास्तिक हो जाना और बना रहना असंभव है। भारतवर्ष में धर्म की भावना बहुत अधिक है। वह बहुत बार अंधविश्वास का, जड़ता का, पागलपन का रूप ले लेती है तो भी मैं मानता हूँ मोह के वश होकर कहो या प्रेम के वश होकर कहो कि भारत वर्ष में बहुत दिनों तक किसी का नास्तिक बने रहना असंभव है।

हिन्दुस्तान कर्मभूमि है। हिन्दुस्तान में ऋषि–मुनियों ने अहिंसा के क्षेत्र में बड़ी से बड़ी खोजें की हैं। परन्तु पूर्वजों की उपार्जित पूँजी पर हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। उसमें यदि वृद्धि न की जाए तो समाप्त हो जाती है।

अपने देश के लोगों में अपने देश के प्रति बेहतर समझ पैदा करने का तरीका यह है कि हम अपने जीवन में अपने देश के श्रेष्ठतम गुणों को प्रतिबंधित करे।

खादी

मेरा तो एक ही संदेश है वह है खादी। तुम मेरे हाथ में खादी दो और मैं तुम्हारे हाथ में स्वराज्य रख दूँगा।

मेरी जो योजनाएँ हैं कमजोरियाँ या जिद हैं—आप उन्हें चाहे किसी के नाम से पुकारे उनमें खादी मुझे सबसे अधिक प्रिय है। यह पवित्र वस्तु है। आप सोचिए खादी का अर्थ क्या है ?

चरखा मुझे स्वस्थ रखता है और तब मैं निश्चिंत रहता हूँ। चिन्ताओं का बोझ तो मैंने भगवान के सशक्त कंधों पर डाल रखा है।

विविध

मेरे ख्याल से 'संत' शब्द का प्रयोग वर्त्तमान युग में निषिद्ध माना जाना चाहिए। मनचाहे ढंग से हर किसी के लिए इस पवित्र शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित है और मेरे लिए तो और भी अनुचित है मैं तो केवल एक विनीत सत्य—शोधक हूँ।

निर्दोष सुख और निर्दोष आनन्द कहीं से भी मिले ले लो।

हमें संसार की किसी भी वस्तु के बदले अपने प्राचीन काल की सरलता, अपनी सादगी को त्यागने के लिए तैयार नहीं होना चाहिए। पाश्चात्य देशों से आधुनिकता की मोहक चौकाचौंध ऐसी तड़ित गति से कौंधकर आ रही है कि लगता है जैसे हम उसमें डूब जायेंगे, उसी के रंग में रंग जायेंगे। इसी से पश्चिम से जो तड़क—भड़क वाली चीजे आपके पास आती है। उनसे आप चकाचौंध मत हो जाइए।

इस अस्थायी दिखावे के कारण आपके पैर न लड़खड़ा जायें। अपने पूर्वजों की सादगी से दूर मत हटिए। एक ऐसा समय आ रहा है जब वे लोग, जो आज की अंधी दौड़ में पड़कर अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाते जा रह हैं, अपने कदम वापस लौटाएगें। करूणामय और दयालु, सहिष्णुता की साक्षात मूर्ति ईश्वर, अर्थ पिशाच को केवल चार दिन का चमत्कार दिखाने देता है। लेकिन अगले ही दिन हमारे अन्तर में अवस्थित दशानन रावण का हमारे अन्तर में प्रतिष्ठित राम द्वारा विनाश होना अवश्यंभावी है।

गौ—सेवा हिन्दूधर्म का एक स्तंभ है और फिर भी यहाँ गाय की जितनी शोचनीय अवस्था है इतनी दुनिया में और कहीं नहीं है।

मैं हिन्दुस्तान में सदाव्रत नहीं खोलना चाहता। मैं तो सदाव्रतों को बंद करना चाहता हूँ। मैं मानता हूँ कि सदाव्रत हमारे माथे पर कलंक है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि सब स्वावलंबी बन जायें। मैं इन बहनों को चार पैसे मुफ्त नहीं दिलाना चाहता। मैं तो उन्हें स्वावलंबी बनाना चाहता हूँ।

निरामिष

निरामिषाहार शरीर के विकास निखार के लिए नहीं बल्कि आत्मा की उन्नति के लिए है। मनुष्य केवल हाड़—मांस का पुतला तो नहीं है। हमें चिन्ता तो मुनुष्य की आत्मा की है।

निरामिष आहार का महत्व मेरे लिए असीम है। घाटियों में मुक्त विचरने वाले उन भेड़ों के झुंडो को मारने की बात मैं सोच नहीं सकता। जो सत्ता मुझ पर दया बरसाती है उसी से मैंने इस पर दया करना सीखा है।

विवाह

विकार का पोषण करना प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन है। मैं शुद्ध प्रेम के लिए शादी करने में विश्वास नहीं रखता। यदि आप किसी से प्रेम करते है तो उससे शादी करें ही, यह आवश्यक नहीं।

विवाह व्यभिचार के पोषण के लिए नहीं है। विवाह स्त्री–पुरूष के बीच पवित्र प्रेम के पोषण का और वंशवद्धि का साधन है। धर्म में विवाहितों के काम से उत्तेजित होने पर मर्यादा में रहकर उसकी तृप्ति करने का रियायत है। इस रियायत का जितना कम उपयोग किया जाए उतना ही अच्छा माना गया है। विवाह से बाहर रहकर किया हुआ संग अथवा केवल कामतृप्ति के लिए दंपत्ति का मनमाने तौर पर किया गया संग, व्यभिचार है।

जो मनुष्य घर गृहस्थी चलाने में असमर्थ है उसे चाहिए कि वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश ही न करें। गृहस्थाश्रम विषय–सेवन या भोग–विलास के ही लिए नहीं है–गृहस्थ यदि चाहे तो मर्यादित मात्रा में संतान उत्पत्ति की इच्छा से, स्वपत्नी के साथ विषय–सेवन कर सकता है। विषय–भोग के लिए ही विषय भोग करना क्या हिन्दू धर्म में और क्या अन्य धर्मों में सर्वथा त्याज्य नहीं कहा गया है ?

विवाह में किए जाने वाले खर्च की बात तो दुखप्रद है क्योंकि लोग हर जगह अपनी धनराशि के अभिमान में आकर अमर्यादित खर्च करते हैं और गरीबों में भेद–बुद्धि उपजाते हैं।

–सुजाता

❑❑❑